दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

सुरक्षित : 14.12.2022
उद्घोषित : 07.02.2023

रि.या.(आप.) 1729/2009

एसआर. सेफी .... याचिकाकर्ता

द्वारा: श्री रोमी चाको, श्री वरुण मुदगल तथा श्री सुदेश कुमार, अधिवक्तागण

बनाम

सीबीआई व अन्य .... प्रत्यर्थीगण

द्वारा: श्री रिपु दमन भारद्वाज, सीबीआई हेतु वि.लो.अभि. तथा श्री कुशाग्र कुमार, अधिवक्ता

श्री कीर्तिमान सिंह, के.स.स्था.अधि. के साथ श्री वैज अली नूक, श्री माधव बजाज तथा सुश्री कुंजाला भारद्वाज, भारत संघ हेतु अधिवक्तागण

श्री एस. नंदा कुमार, सुश्री दीपिका नंदा कुमार तथा श्री आनंद मूर्ति राव, प्र-4 (एनएचआरसी) हेतु अधिवक्तागण

कोरमः

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री स्वर्ण कांता शर्मा

<u>निर्णय</u>

निर्णय हेतु अनुक्रमणिका

क. तथ्यात्मक पृष्ठभूमि 4-7

ख. याचिका की पोषणीयता 7-17

i. प्रत्यर्थीगण की प्रारंभिक आपत्तियां 7

ii. याचिकाकर्ता की ओर से प्रतिविरोध 10

iii. इस न्यायालय के निष्कर्ष 14

ग. अन्वेषण के अधीन किसी महिला अभियुक्त पर किए गए कौमार्य परीक्षण की संवैधानिक विधिमान्यता 17-53

i. याचिकाकर्ता का मामला 17

ii. प्रत्यर्थीगण की ओर प्रस्तुतियां 23

iii. विश्लेषण तथा निष्कर्ष 27

क. भारतीय पूर्व निर्णय 27

ख. कौमार्यता परीक्षण पर अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य 34

ग. क्या 'कौमार्य परीक्षण' दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 53 के अंतर्गत आता है 35

घ. हिरासत में सम्मान बनाम कौमार्य परीक्षण की संवैधानिक विधिमान्यता 43

ड. कौमार्य परीक्षण : पीड़िता बनाम अभियुक्त 48

घ. निष्कर्ष तथा निर्देश 53-57

<u>न्या., स्वर्ण कांता शर्मा</u>

1. यह न्यायालय इस निर्णय द्वारा विधि के निम्नलिखित गंभीर प्रश्नों की जांच करता हैः

> **"क्या जांच के दौरान पुलिस हिरासत में किसी महिला का कौमार्य परीक्षण करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन है"**

2. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता ने, वर्तमान याचिका के माध्यम से, निम्नलिखित प्रार्थनाओं की मांग की हैः

> (क) एक घोषणा जारी की जाए कि प्रत्यर्थी-सीबीआई द्वारा याचिकाकर्ता का 'कौमार्य परीक्षण' करना असंवैधानिक है और मौलिक अधिकारों के सिद्धांतों के खिलाफ है।
>
> (ख) सीबीआई के उन दोषी अधिकारियों को दंडित किया जाए जिन्होंने याचिकाकर्ता को उसकी स्वतंत्र इच्छा के विरुद्ध 'कौमार्य परीक्षण' कराया और परीक्षण के आयोजन व परिणाम को मीडिया में लीक किया।

(ग) याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थीगण द्वारा उसे 'कौमार्य परीक्षण' से गुजरने के कारण हुई मानसिक पीड़ा / यातना / अपमान के लिए याचिकाकर्ता को अनुकरणीय प्रतिकर देने का निर्देश दिया जाए।

(घ) चौथे प्रत्यर्थी द्वारा जारी 6/8.5.2009 के आदेश को अभिखंडित किया जाए।"

(ङ) आगामी आदेशों में ऐसे अन्य आदेश पारित किए जाए, जिन्हें यह माननीय न्यायालय याचिका के तथ्यों व परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझे।

क. <u>तथ्यात्मक पृष्ठभूमि</u>

3. कोट्टायम, केरल में एक छात्रावास का एक वासी दिनांक 27 मार्च, 1992 को कुएं में मृत पाया गया था और स्थानीय पुलिस ने 'एक्स' द्वारा दिए गए बयान के आधार पर अपराध संख्या 187/92 को 'अप्राकृतिक मृत्यु' के रूप में दर्ज किया था। यद्यपि केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने इस बारे में युक्तियुक्त संदेह व्यक्त किया था कि मृतक की मृत्यु आत्महत्या थी या मानव हत्या, जैसा कि न्यायालय के समक्ष दिनांक 29.11.1996 को प्रस्तुत अंतिम आख्या से स्पष्ट है, उसी अन्वेषण अभिकरण की कोच्चि इकाई ने यह निष्कर्ष निकालने में एक अलग रुख अपनाया कि मृत्यु मानव हत्या थी। अन्वेषण अभिकरण ने याचिकाकर्ता को दो अन्य सह-अभियुक्तों के साथ तीसरे अभियुक्त के रूप में प्रस्तुत किया।

4. याचिकाकर्ता को दिनांक 19.11.2008 को गिरफ्तार किया गया और उसे एर्नाकुलम के मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय के समक्ष पेश किया गया, जिसने आगे की जांच के लिए याचिकाकर्ता को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की हिरासत में भेज दिया।

5. दिनांक 25.11.2008 को दोपहर तक याचिकाकर्ता को गंतव्य या उद्देश्य बिना बताए अलापुझा मेडिकल कॉलेज ले जाया गया, जहां न्याय संबंधी विज्ञान विभाग की दो महिला डॉक्टर और सरकारी मेडिकल कॉलेज की एक स्त्री रोग विशेषज्ञ मौजूद थीं। याचिकाकर्ता को एक कमरे में ले जाया गया और उसे एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया और मामले के बारे में उसके पूछताछ करने पर, उसे बताया गया कि यह एक परीक्षण के लिए सहमति पत्र था। यह याचिकाकर्ता का मामला है कि उसकी सहमति केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अधिकारियों द्वारा और डॉक्टरों द्वारा विबाध्यता और विबाध्यता तथा प्रपीड़न में उसे गंभीर मानसिक यातना देकर जबरन प्राप्त की गई थी। इसके बाद याचिकाकर्ता का 'कौमार्य परीक्षण' तथा 'स्वैब परीक्षण' करवाया गया और इसके बाद लगभग एक घंटे के बाद उसे वापस अतिथिगृह ले जाया गया।

6. बाद में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो को अत्यंत निराश करने वाला तथ्य यह पता चला कि डॉक्टरों द्वारा किए गए परीक्षणों ने साबित किया कि याचिकाकर्ता का योनिच्छद अविकल था। याचिकाकर्ता पर किए गए कौमार्य परीक्षण का परिणाम प्रतिकूल सिद्ध हो जाने पर, केंद्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारियों ने अपनी लाज

बचाने के उद्देश्य से, इस प्रभाव के साथ एक नई कहानी गढ़ ली कि याचिकाकर्ता ने योनिच्छद में टाँके लगवाने के लिए सर्जरी या "हाइमेनोप्लास्टी" कराई है।

7. दिनांक 28 नवंबर, 2008 को और उसके बाद के दिनों में, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने याचिकाकर्ता पर किए गए कौमार्य परीक्षण की खबर और याचिकाकर्ता के केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा योनिच्छद में टाँके लगवाने के लिए सर्जरी किए जाने की कहानी जारी की। यह याचिकाकर्ता का मामला है कि उपरोक्त आख्याओं को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा परीक्षण के परिणाम को दिनांक 02.12.2008 को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने से पूर्व ही सार्वजानिक कर दिया गया था।

8. याचिकाकर्ता के अनुसार, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो उसके खिलाफ दुर्भावनापूर्ण अभियान चला रहा था। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अधिकारियों के आचरण से बेहद शर्मिंदा और स्तब्ध महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने दिनांक 11.02.2009 को भारत सरकार के सचिव, लोक शिकायत विभाग और केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के निदेशक के समक्ष वास्तविक तथ्यों को उजागर करते हुए एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया और मामले में उनके हस्तक्षेप और याचिकाकर्ता की शिकायतों का निवारण करने की मांग की। उपर्युक्त अभ्यावेदन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं आई।

9. इसलिए, याचिकाकर्ता ने इस मामले में आवश्यक हस्तक्षेप करने के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से संपर्क किया, और दिनांक 17.03.2009 को एक

याचिका/अभ्यावेदन दायर की। हालांकि, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को दिनांक 06.05.2009 को एक पत्र जारी कर व्यक्त किया कि आयोग राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (प्रक्रिया) विनियम, 1994 के यथा संसोधित विनियम 9 के अनुसार शिकायत पर आगे बढ़ने के लिए इच्छुक नहीं है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने शिकायतकर्ता को मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोपों को न्यायालय के संज्ञान में लाने की भी स्वतंत्रता प्रदान की।

10. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने दिनांक 24.07.2009 को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष आरोप पत्र दायर किया जिसमें याचिकाकर्ता का कौमार्य परीक्षण और उसके परिणाम को स्वीकार किया गया। हालांकि, यह साबित करने में अपनी विफलता को छिपाने के प्रयास में कि याचिकाकर्ता कुमारी नहीं है, आरोप पत्र के अनुच्छेद 53 में यह आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता के योनिच्छद को बार-बार यौन संभोग के कारण योनिच्छद के फटने के सबूत को छिपाने के लिए हाइमेनोप्लास्टी की गई थी।

11. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसकी सहमति के विरुद्ध केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा 25 नवम्बर, 2008 को जबरन उसका 'कौमार्य परीक्षण' कराया गया। कथित कौमार्य परीक्षण अन्वेषण अभिकरण द्वारा मृतक की मृत्यु के संबंध में उनके मामले को साबित करने के लिए एक जांच के बहाने किया गया था, जो दिनांक 27 मार्च 1992 को एक कुएं में मृत पाया गया था। कथित परीक्षण का परिणाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा मीडिया में कथित रूप से लीक

कर दिया गया था और यह याचिकाकर्ता का मामला है कि केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो का याचिकाकर्ता को उसकी स्वतंत्र इच्छा के विरुद्ध जबरन कौमार्य परीक्षण कराने और संबंधित न्यायालय के समक्ष परिणाम प्रस्तुत करने से भी पहले अन्वेषण अभिकरण द्वारा इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया को परीक्षण का चयनात्मक लीकेज करने का आचरण याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है।

ख. <u>याचिका की पोषणीयता</u>

i. प्रत्यर्थीगण की प्रारंभिक आपत्तियां

12. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान विशेष लोक अभियोजक श्री रिपु दमन भारद्वाज प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि के विरुद्ध याचिकाकर्ता की अपील केरल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए वर्तमान मामले में विचारण अभी भी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील के रूप में चल रहा है जिसे विचारण न्यायालय की कार्यवाहियों का विस्तार माना गया है। इस संबंध में ***अखतरी बी बनाम मध्य प्रदेश राज्य*** *(2001) 4 एससीसी 355* में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया गया है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया हैः

> "5 ...अपील एक वैधानिक अधिकार होने के नाते, विचारण न्यायालय का निर्णय अपील के लंबित रहने के दौरान अंतिम

रूप नहीं लेता है और इस उद्देश्य से उसका विचारण दोषसिद्धि के बावजूद भी जारी माना जाता है..."

13. ऐसा प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि विचारण केरल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए इस न्यायालय को वर्तमान याचिका पर विचार करने और कोई राहत प्रदान करने की कोई अधिकारिता नहीं है क्योंकि यह केरल उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश करने के समान होगा। आगे यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय के किसी भी निष्कर्ष का याचिकाकर्ता के लंबित विचारण पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ेगा।

14. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से की गई प्रस्तुतियों को दोहराते हुए भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री कीर्तिमान सिंह प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि वर्तमान मामले का विचारण केरल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए यह याचिका तत्काल रूप से अस्वीकार किए जाने योग्य है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के पास संबंधित उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी अपील में वर्तमान मुद्दे को उठाने के सभी अधिकार हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को दो अलग-अलग उच्च न्यायालयों के समक्ष एक ही मुद्दा उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और उसे एक न्यायालय का चयन करना होगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान याचिका एक जनहित याचिका नहीं है और यह न्यायालय मामले के तथ्यों के बिना कौमार्य परीक्षण की संवैधानिक विधिमान्यता के मुद्दे पर निर्णय नहीं ले सकता है। यह आगे प्रस्तुत

किया गया है कि याचिकाकर्ता उन तथ्यों से बाध्य है जो उसे नियंत्रित करते हैं और शून्य में एक घोषणा विधि में अन्यथा अनुमेय नहीं है, और यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि संवैधानिक न्यायालयों को काल्पनिक विधा संबंधी प्रश्नों का उत्तर नहीं देना चाहिए। इस संबंध में, वह ***संजीव कोक मैन्युफैक्चरिंग कंपनी बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड*** *(1983) 1 एससीसी 147* तथा ***कुसुम इंगोट्स एंड एलॉयज लिमिटेड बनाम भारत संघ*** *(2004) 6 एससीसी 254* भरोसा जताते हैं।

15. भारत संघ के लिए विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह प्रस्तुतीकरण कि वह केरल उच्च न्यायालय में याचिकाकर्ता के विचारण से स्वतंत्र रूप से कौमार्य परीक्षण को चुनौती दे रहे हैं, असमर्थनीय है। यह कहा गया है कि वर्तमान याचिका पूरी तरह से याचिकाकर्ता को प्रोद्भूत वाद-हेतुक पर आधारित है और यह कहना गलत होगा कि वर्तमान वाद हेतुक का केरल उच्च न्यायालय के समक्ष सुनवाई से कोई लेना-देना नहीं है। भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता बताते हैं कि वर्तमान याचिका में उल्लिखित सभी तथ्य केरल में विचारण के हैं, जिसके लिए एक अपील केरल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है। आगे यह कहा गया कि वर्तमान याचिका की प्रार्थना में भी याचिकाकर्ता पर किए गए कौमार्य परीक्षण को असंवैधानिक घोषित करने के लिए कहा गया है।

16. भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि केरल उच्च न्यायालय इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए मुद्दे को निर्णित नहीं कर सकता या याचिकाकर्ता के पक्ष में की गई कोई घोषणा केरल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित विचारण कार्यवाहियों को प्रभावित नहीं कर सकती है। भारत संघ के लिए विद्वान अधिवक्ता यह प्रतिवाद करने के लिए ***डीसीएम श्रीराम इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम एचबी स्टॉकहोल्डिंग्स लिमिटेड*** *(2014) एससीसी ऑनलाइन डेल 1572* में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताते हैं कि एक ही वाद-हेतुक के आधार पर समान राहत हेतु समानांतर कार्यवाहियों को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए, यह भी प्रकथन किया गया है कि चुनाव के सिद्धांत को लागू करना पूर्वधारणा है, जब ऐसे उपचारों का चयन होता है जो चरित्र में असंगत होते हैं, तो पक्षकार को दूसरे को छोड़कर एक का चयन करना पड़ता है। वर्तमान संदर्भ में, भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि इस न्यायालय के परिणाम का केरल उच्च न्यायालय के समक्ष विचारण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, त्रुटिपूर्ण है।

17. यह तर्क दिया गया है कि मुआवजे की मांग करने वाली याचिका भी गलत है, जहाँ तक कि यदि याचिकाकर्ता सामान्य रूप से अभियुक्त पर किए गए कौमार्य परीक्षण की असंवैधानिकता की घोषणा की मांग करता है, तो मामले के

दिए गए तथ्यों में मुआवजे का कोई सवाल नहीं होगा। यह तर्क दिया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता के संदर्भ में याचिकाकर्ता पर किए गए कौमार्य परीक्षण के साथ-साथ मुआवजे को असंवैधानिक घोषित करने की मांग की जाती है, तो इस न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों की विवेचना करना आवश्यक है, जो केरल उच्च न्यायालय द्वारा विचाराधीन हैं।

ii. याचिकाकर्ता की ओर से प्रतिविरोध

18. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री रोमी चाको का तर्क है कि वर्तमान याचिका अनुच्छेद 226 के खंड (1) व (2) दोनों के तहत पोषणीय है, जो इस प्रकार हैः

> 226. उच्च न्यायालयों की कतिपय रिट जारी करने की शक्ति:
>
> (1) अनुच्छेद 32 में किसी बात के होते हुए भी, प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, **भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी की प्रवर्तित करने हेतु** और किसी अन्य प्रयोजन के लिए, उन राज्यक्षेत्रों के भीतर **किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को या समुचित मामलों में किसी सरकार की ऐसे निदेश, आदेश या रिट** जिनके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेष्ण, की प्रकृति की रिट हैं, या इनमें से कोई जारी करने की शक्ति होगी।

(2) किसी सर्कार, प्राधिकारी या व्यक्ति को निदेश, आदेश या रिट जारी करने की खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग **उन राज्यक्षेत्रों के संबंध में, जिनके भीतर ऐसी शक्ति के प्रयोग के लिए वादहेतुक पूर्णतः या भागतः उत्पन्न होता है, अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी उच्च न्यायालय द्वारा भी, इस बात के होते हुए भी किया जा सकेगा** कि ऐसी सरकार या प्राधिकारी का स्थान या ऐसे व्यक्ति का निवास-स्थान उन राज्यक्षेत्रों के भीतर नहीं है।

(जोर दिया गया)

19. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि वर्तमान रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 226(1) के तहत पोषणीय है क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा प्रार्थना खंड (ख), (ग) व (घ) में प्रार्थित अनुतोष के साथ, अन्य बातों के साथ, आदेश जारी करना और प्रत्यर्थीगण अर्थात् भारत संघ, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो एवं राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, जो सभी इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में स्थित हैं, द्वारा पारित आदेश को अपास्त करना भी शामिल है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि क्षेत्रीय अधिकारिता के आधार पर, याचिका इस न्यायालय के समक्ष पोषणीय होगी। यह तर्क दिया गया है कि अनुच्छेद 226 के खंड (1) के प्रयोजनों के लिए वादहेतुक अप्रासंगिक है, और अनुच्छेद 226 का विधायी इतिहास दर्शाता है कि प्रारंभ में अनुच्छेद 226 का खंड (2) अस्तित्व में नहीं था और इसलिए उच्च न्यायालय केवल एक प्राधिकरण के खिलाफ रिट जारी

कर सकता था जो उसके क्षेत्रों के भीतर स्थित है। इस संबंध में ***भारत निर्वाचन आयोग बनाम सागा वेंकट सुब्बा राव*** *एआईआर 1953 एससी 210* ***और लेफ्टिनेंट कर्नल खजूर सिंह बनाम भारत संघ*** *एआईआर 1961 एससी 532* वाले मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया गया है।

20. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि अनुच्छेद 226 को संविधान के 15 वें संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया था, जिसके द्वारा अनुच्छेद 226 में खंड (1क) को जोड़ा गया था। बाद में संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा खंड (1क) को खंड (2) के रूप में पुनः संख्यांकित किया गया। संशोधन का प्रभाव यह था कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को अधिकारिता प्रदान करने के लिए वादहेतुक के प्रोद्भवन को एक अतिरिक्त आधार बनाया गया था। अनुच्छेद 226 (1) व अनुच्छेद 226 (2) के तहत अधिकारिता विशिष्ट एवं भिन्न है। अनुच्छेद 226 (2) प्रत्येक उच्च न्यायालय को यह अतिरिक्त शक्ति प्रदान करता है कि वह अपने राज्यक्षेत्र में रिट जारी कर सकता है जिसके भीतर वादहेतुक पूर्णतः या भागतः उत्पन्न होता है।

21. श्री चाको आगे प्रस्तुत करते हैं कि यहां तक कि संविधान के अनुच्छेद 226 (2) के तहत भी याचिका पोषणीय होगी क्योंकि वर्तमान याचिका दायर करने के लिए वादहेतुक इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर उत्पन्न हुआ था। यह प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय में जाने का कारण प्रत्यर्थीगण की ओर

से चूक थी, जो इस न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर स्थित हैं, ताकि वह उचित कार्रवाई कर सके और याचिकाकर्ता को उसके मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए मुआवजा सहित राहत प्रदान कर सके। श्री चाको द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि इन प्राधिकारियों अर्थात् प्रत्यर्थीगण के समक्ष दायर किए गए अभ्यावेदन याची पर एक किये गए एक असंवैधानिक परीक्षण के संबंध में थे, इस के सम्बन्ध में न्यायालय के समक्ष घोषणा की मांग की जाती है, जो अन्य प्रार्थनाओं पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक है।

22. प्रत्य्यार्थीगण के लिए विद्वान अधिवक्तागण की प्रस्तुतियों का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा, अर्थात् याचिकाकर्ता पर किए गए कौमार्य परीक्षण की असंवैधानिकता, किसी अन्य न्यायालय के समक्ष सीधे या पर्याप्त रूप से विचार के लिए मुद्दा नहीं है, और केरल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषसिद्धि के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील है। वे प्रस्तुत करते हैं कि यह उनका मसला नहीं है कि कथित माले का परिणाम क्या है जो की अभियुक्त द्वारा सामना किया गया आपराधिक विचारण है जिसमें उसे पहले से दोषसिद्ध किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि उनकी दलील यह है कि आपराधिक मामले के संबंध में इस परीक्षण की कोई आवश्यकता नहीं थी और वह अनुशासनात्मक कार्रवाई और पीड़िता को मुआवजा देने के साथ-साथ पूछताछ के अंतर्गत एक महिला पर किए

जा रहे इस परीक्षण की संवैधानिक विधिमान्यता की मांग कर रहे हैं, जो संबंधित राज्य में विचारण न्यायालय के समक्ष एक मुद्दा नहीं है।

23. वह आगे प्रतिवाद करते हैं कि ये दोनों प्रार्थनाएं न तो सीधे या पर्याप्त रूप से आपराधिक न्यायालय के समक्ष विवाद में हैं और बल्कि वे उस आपराधिक न्यायालय के समक्ष, जहां विचारण चल रहा है, दूर ददोर तक विवाद में नहीं हैं। विद्वान अधिवक्ता का यह भी तर्क है कि इस याचिका में प्रत्यर्थीगण ने याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार की रक्षा करने की अपनी जिम्मेदारी छोड़ दी और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के दिल्ली में स्थित मुख्यालय में उसके द्वारा दिए गए अभ्यावेदनों ने इस न्यायालय के समक्ष आक्षेपित, अवैध आदेश पारित किया था, जिन्हें अपास्त किया जाना चाहिए और याचिकाकर्ता को मुआवजा दिया जाना चाहिए। वे प्रस्तुत करते हैं कि यह मुद्दा भी किसी अन्य राज्य के संबंधित आपराधिक न्यायालय के समक्ष लंबित नहीं है। यह कहा गया है कि ऐसी कार्यवाहियों को वर्जित करने के लिए सिविल विधि में "न्यायाधीन" नियमों के समान कोई नियम अस्तित्व में नहीं है। हालांकि, इस संबंध में, ***राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य और स्नायु विज्ञान संस्थान बनाम सी. परमेश्वर*** *(2005) 2 एससीसी 256* के निर्णय पर यह प्रतिवाद करने के लिए भरोसा जताया गया है कि सिविल विधि के अधीन भी, नियम आदेश देते हैं कि विचाराधीन विषय आनुषांगिक या सांपार्श्विक रूप में विरोध में होने के बजाय प्रासंगिक या प्रत्यक्ष रूप से न्यायालय के समक्ष विरोध में होने चाहिए।

24. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह भी प्रस्तुत करते हैं कि यह न्यायालय, एक संवैधानिक न्यायालय होने के नाते, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका में, नागरिकों के मौलिक अधिकारों के मुद्दों से निपटने के लिए पर्याप्त शक्तियां रखता है। यह कहा गया है कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता जो एक आपराधिक मामले में अभियुक्त थी, उसे उसकी सहमति के बिना असंवैधानिक कौमार्य परीक्षण से गुजरना पड़ा। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि पीड़िता हालांकि आपराधिक मामले में एक अभियुक्त है, उसे इस आधार पर संवैधानिक उपचार से वंचित नहीं किया जा सकता कि विचारण या अपील उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है।

iii. इस न्यायालय के निष्कर्ष

25. याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत तत्काल रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है| इस याचिका की पोषणीयता पर बहस विस्तार से सुनी गई|

26. निःसंदेह, संविधान के अनुच्छेद 226 (1) के अधिदेश के अनुसार, इस न्यायालय को वर्तमान याचिका पर विचार करने का अधिकार है क्योंकि प्रार्थना खंड (ख), (ग) और (ङ) के अनुसार मांगी गई राहत यहां पर प्रत्यर्थी अर्थात् भारत संघ, केंद्रीय जांच ब्यूरो और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के विरुद्ध है, जिसका मुख्यालय इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में स्थित है| याचिकाकर्ता के विद्वान

अधिवक्ता की दलीलों पर विचार करते हुए, यह नोट किया गया है कि ***भारत निर्वाचन आयोग बनाम सागा वेंकट सुब्बा राव*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को पलट दिया था और यह अभिनिर्धारित किया था कि मद्रास उच्च न्यायालय के पास भारत के निर्वाचन आयोग के विरुद्ध रिट जारी करने की शक्ति नहीं थी चूँकि उक्त आयोग नई दिल्ली में स्थित था और मद्रास उच्च न्यायालय के क्षेत्र के भीतर नहीं था| इसके अलावा, शीर्ष न्यायालय के सात न्यायाधीशों की पीठ द्वारा ***लेफ्टि. कर्न. खजूर सिंह बनाम भारत संघ*** (उपर्युक्त) में बहुमत में जो निर्णय दिया वह न्यायालय द्वारा ***सागा वेंकट सुब्बा राव*** में व्यक्त मत को स्वीकृत करता और अभिनिर्धारित करता है कि जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय इस आधार पर याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका पर विचार नहीं करने में सही था कि उसके पास कोई क्षेत्रीय अधिकारीता नहीं थी|

27. दूसरा, यहां तक कि वर्तमान याचिका दायर करने के लिए वादहेतुक अर्थात याचिकाकर्ता को राहत प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थी की निष्क्रियता और याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व की अस्वीकृति भी इस न्यायालय की अधिकार क्षेत्र के भीतर उत्पन्न हुई| यह ***कुसुम इंगोट्स एंड एलॉयज लिमिटेड बनाम भारत संघ*** (उपर्युक्त) में शीर्ष न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त रूप से निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:-

> "10. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के खंड (2) में उपयोग की गई अभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए निर्विवाद रूप से, भले ही न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर वादहेतुक का एक छोटा सा अंश उद्भूत होता है तो इस मामले में न्यायालय की अधिकारिता होगी|"

28. हालाँकि, याचिकाकर्ता की पूर्वोक्त तीन प्रार्थनाओं पर निर्णय करने के लिए, पहले प्रार्थना (क) से निपटना आवश्यक है चूँकि सभी अन्य प्रार्थनाएँ प्रार्थना (क) से जुडी हुई हैं| इस न्यायालय के समक्ष पहली प्रार्थना हिरासत में लिए गए आरोपी का वर्जिनिटी टेस्ट असंवैधानिक होने से संबंधित है| अनिवार्य रूप से, यह एक ऐसा मुद्दा है जो एक व्यक्ति के मूल अधिकारों से संबंधित है और इसमें किसी भी संदेह के बिना रिट न्यायालयों को ऐसे मुद्दों से निपटने और निर्णय लेने का अधिकार है| इसके अतिरिक्त, यह ऐसा मामला या मुद्दा नहीं है जो केरल उच्च न्यायालय के समक्ष सीधे या सारतः लंबित मामला है, जो भा.दं.सं. की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि के विरुद्ध है| आपराधिक मामले में विचारण कर रहे केरल के न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह है कि क्या इस मामले में याचिकाकर्ता, जो केरल में एक लंबित मामले में आरोपी है, ने हत्या का अपराध किया है या नहीं| यह इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा नहीं है, बल्कि इस रिट याचिका द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कोई प्रार्थना नहीं की गई है जो एक अभियुक्त के रूप में याचिकाकर्ता के किसी अधिकार या विवाद को संदर्भित करती है| बल्कि याचिकाकर्ता इस रिट याचिका द्वारा, हालाँकि एक हत्या के मामले की

आरोपी है, जिसके जांच के दौरान वर्जिनिटी टेस्ट किया गया था यह घोषित करने की मांग करता है कि इस तरह का परीक्षण असंवैधानिक था जिसने व्यक्तिगत समानता, गरिमा और निजता के उसके अधिकार का उल्लंघन किया था और इसे नहीं किया जा सकता था| यह प्रश्न भी संबंधित आपराधिक विचारण न्यायालय के समक्ष एक मुद्दा नहीं है| यदि याचिकाकर्ता ने जांच के संबंध में कोई राहत मांगी होती या जांच के दौरान किए गए किसी भी परीक्षण के परिणाम को रद्द कर दिया होता जो उस मामले के परिणाम या सबूतों के मूल्यांकन को प्रभावित कर सकता था, तो यह न्यायालय निश्चित रूप से इस संबंध में की गई प्रार्थना की सुवाई नहीं करता| इसे ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों को प्रतिग्रहण करने में असमर्थ है कि इसमें याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई राहत भी केरल उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है|

29. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत, चूंकि याचिकाकर्ता पर किए गए इस परीक्षण की असंवैधानिकता के बारे में अभ्यावेदन केंद्रीय जांच ब्यूरो के मुख्यालय में दिल्ली में दिए गए थे और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के मुख्यालय दिल्ली को दिए गए थे और उनके साथ राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा संभाला गया था और दिल्ली में केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा नहीं देखा गया था, इसलिए इस न्यायालय ने इस बात की जांच करने के उद्देश्य से कि क्या इस तरह का कार्य या चूक संवैधानिक था या अवैध था या नहीं|

30. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों में प्रभाव है कि याचिकाकर्ता को मुआवजे के संवैधानिक उपचार से वंचित नहीं किया जा सकता है जो उसे उस स्थान पर उपलब्ध है जहां उसे मुआवजा देने से इस आधार पर मना किया गया था किसी अन्य स्थान पर आपराधिक विचारण लंबित है| इसलिए, इस न्यायालय ने माना है कि याचिकाकर्ता पर पूछताछ के तहत एक आरोपी के रूप में किए गए वर्जिनिटी टेस्ट की संवैधानिक वैधता तय करने के लिए इस न्यायालय द्वारा जांच और न्यायनिर्णयन किया जा सकता है चूंकि इस संबंध में उसके अभ्यावेदन पर केंद्रीय जांच ब्यूरो और एनएचआरसी द्वारा कार्रवाई नहीं की गई थी जिनके मुख्यालय दिल्ली में है|

31. यह न्यायालय इस तथ्य के प्रकाश में भी यह दृष्टिकोण रखता है कि याचिकाकर्ता का विद्वान अधिवक्ता इस न्यायालय के समक्ष कथित परीक्षण के परिणाम को चुनौती नहीं दे रहे हैं चूँकि इसे केवल संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष कानून के अनुसार चुनौती दी जा सकती है| यह आपराधिक मुकदमे के बाहर है, इसकी कार्यवाहियां, अभियोजन एजेंसी द्वारा एकत्र किए गए सबूतों का मूल्यांकन और कथित मुकदमे के परिणाम से पता चलता है कि इस न्यायालय से एक जांच की प्रक्रिया को परखने के लिए संपर्क किया गया है जिसमें एक आरोपी के रूप में याचिकाकर्ता का वर्जिनिटी परीक्षण किया गया था|

ग. <u>जांच के तहत एक महिला आरोपी पर कराए गए वर्जिनिटी टेस्ट की संवैधानिक वैधता</u>

i. याचिकाकर्ता का मामला

32. यह याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त वर्जिनिटी परीक्षण और मृतक की मृत्यु के बीच कोई संबंध नहीं है| चूंकि मृतक की मृत्यु की घटना वर्जिनिटी टेस्ट करने की तारीख से 16 वर्ष पूर्व हुई थी, इसलिए उसके 16 साल बाद याचिकाकर्ता पर किया गया परीक्षण दुर्भावनापूर्ण है और इसका उद्देश्य याचिकाकर्ता को अपमानित करना और उस झूठे मामले को साबित करना था जिसमें याचिकाकर्ता को फंसाया जा रहा था| फंसा हुआ है। हालाँकि, जब केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा याचिकाकर्ता की वर्जिनिटी को गलत साबित करने का प्रयास किया गया, तो उसे छिपाने के लिए, केंद्रीय जांच ब्यूरो ने याचिकाकर्ता द्वारा हाइमेनोप्लास्टी की नई कहानी का आविष्कार किया था| इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो का इरादा याचिकाकर्ता को बदनाम करना था|

33. यह याचिकाकर्ता का मामला है कि याचिकाकर्ता की समझ और चिकित्सा व्यवसायियों और मेडिको-लीगल विशेषज्ञों से एकत्र की गई राय के अनुसार, 'हाइमेनोप्लास्टी' करने की सुविधा प्रासंगिक समय पर भारत या किसी अन्य एशियाई देश में उपलब्ध नहीं थी, और याचिकाकर्ता के पास पासपोर्ट भी नहीं था और उसने आज तक विदेश यात्रा नहीं की है। यह इस आरोप को और गलत

साबित करता है कि याचिकाकर्ता की हाइमेनोप्लास्टी की गई थी और यह चोट का अपमान करने के बराबर है।

34. इसके अलावा, याचिकाकर्ता के मामले के अनुसार, यह स्वीकार किए बिना भी कि कथित हत्या करने के लिए अभियुक्त का उद्देश्य सही है, याचिकाकर्ता को वर्जिनिटी टेस्ट के अधीन करने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि परीक्षण का परिणाम प्रश्नगत उद्देश्य या अपराध को साबित नहीं करेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि याचिकाकर्ता के कौमार्य का मृतक की कथित हत्या से कोई संबंध नहीं है।

35. आगे याचिकाकर्ता की ओर से यह प्रकथन किया गया है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारियों ने झूठी कहानी साबित करने के बहाने याचिकाकर्ता की स्वतंत्र इच्छा के खिलाफ 'वर्जिनिटी टेस्ट' कराया था और वे कानून के अनुसार दंडित किए जाने के पात्र हैं।ऐसा तब से हो रहा है जब नुकसान याचिकाकर्ता की व्याख्या नहीं की जा सकती और उसे कभी भी धन के रूप में नहीं मापा जा सकता।इसके अलावा, यह प्रकथन किया जाता है कि भविष्य में किसी भी जांच एजेंसी द्वारा वर्जिनिटी टेस्ट के नाम पर किसी भी अन्य निर्दोष पीड़ित को प्रताड़ित करने से रोका जाना आवश्यक है।

36. याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो ने भारत के संविधान के तहत गारंटी प्राप्त अनुच्छेद 14,19,20 (1), 21 और 22 के तहत याचिकाकर्ता के मूल अधिकारों का उल्लंघन किया है और यह कि

याचिकाकर्ता को हत्या के मामले को साबित करने के बहाने वर्जिनिटी टेस्ट से गुजरना पड़ता है।

37. यह प्रस्तुत किया जाता है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा याचिकाकर्ता को वर्जिनिटी टेस्ट के अधीन करने का आचरण भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन बुनियादी मानवीय गरिमा, सम्मान का अधिकार, प्रतिष्ठा और निजता के अधिकार के साथ जीने के याचिकाकर्ता के अधिकार का अतिक्रमण करता है।

38. याचिकाकर्ता की ओर से यह कहा गया है कि जैसा कि ***डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*** *(1997) 1 एससीसी 416* में कहा गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत बहुमूल्य अधिकार दोषियों, विचाराधीन कैदियों, निरुद्ध किए गए कैदियों और हिरासत में लिए गए अन्य कैदियों को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ऐसे उचित प्रतिबंध लगाने से इनकार नहीं किया जा सकता है जो कानून द्वारा अनुमत हैं| चूंकि वर्जिनिटी टेस्ट की अनुमति देने वाला कोई कानून नहीं है, इसलिए केंद्रीय जांच ब्यूरो का आक्षेपित आचरण संविधान के अनुच्छेद 14,19,20 (3) और 21 के तहत याचिकाकर्ता के मूल अधिकारों का घोर उल्लंघन है।

39. यह प्रस्तुत किया जाता है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो ने किसी न्यायालय की अनुमति प्राप्त किए बिना याचिकाकर्ता का वर्जिनिटी टेस्ट किया। इस कारण से भी केंद्रीय जांच ब्यूरो का आक्षेपित आचरण अवैध, मनमाना और इसलिए ही

असंवैधानिक है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि भारत मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और नागरिक व राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा का हस्ताक्षरी है, इसलिए, प्रसंविदाओं का पालन करने के लिए बाध्य है।

40. यह आगे याचिकाकर्ता का मामला है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने न्यायालय के समक्ष मामले को विचाराधीन होने के आधार पर याचिकाकर्ता की शिकायत पर विचार करने में विफल रहने की गलती की। आयोग ने यह निर्दिष्ट नहीं किया है कि किस न्यायालय का मामले पर अधिकार क्षेत्र है और न ही याचिकाकर्ता को इस जानकारी के स्त्रोत के बारे में पता था क्योंकि आयोग द्वारा याचिकाकर्ता को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था और न ही याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिया गया था| यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा किए गए वर्जिनिटी टेस्ट को किसी न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी है और यह कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित सुपुर्दगी की कार्यवाही का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के समक्ष याची द्वारा मांगी गई राहत से कोई लेना-देना नहीं है| वास्तव में मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 12 (क) के अनुसार, आयोग मानव अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत में किसी पीड़ित द्वारा दायर याचिका की जांच करने के लिए बाध्य है और चूंकि आयोग ने इस संबंध में अपना कार्य त्याग दिया है,

इसलिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा जारी किया आदेश उपर्युक्त प्रावधान का अधिकारातीत उल्लंघन करता है|

41. याचिकाकर्ता ने यह भी कहा है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा दिनांक 06.08.2009 को पारित आदेश अधिकरातीत है चूंकि आक्षेपित आदेश पारित किए जाने से पहले याचिकाकर्ता को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था और कि यह अस्पष्ट, गैर-भाषी और मनमाना है| यह भी कहा गया है कि आयोग का याचिकाकर्ता द्वारा दायर शिकायत को खारिज करने हेतु राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग विनियम 1994 के विनियम 9 पर भरोसा करना उचित नहीं था| यह तर्क दिया गया है कि विनियम 9 (xi) केवल यह कहता है कि जो शिकायत न्यायाधीन है, उस पर विचार नहीं किया जा सकता है| यह तर्क दिया गया है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग विनियमन 1994 का विनियमन 9 (xi) दं.प्र.सं. की धारा 10 के समान है और इसलिए, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 12 के तहत अपना वैधानिक कार्य यह रुख लेने में छोड़ा है कि टेस्ट की स्वीकृति के मुद्दे की कार्यवाहियों के साथ-साथ अधिकारों के उल्लंघन के मुद्दे भी सक्षम विधि न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णित हो| यह तर्क दिया गया है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के समक्ष उठाए गए मुद्दे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या किसी अन्य न्यायालय के समक्ष नहीं उठाए गए थे और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के समक्ष याचिकाकर्ता

द्वारा मांगी गई राहत का संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई राहत से कोई लेना-देना नहीं था।

42. यह कहा गया है कि यदि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग उक्त धारा के तहत आश्रय लेगा तो वह मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 12 के तहत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में निहित वैधानिक शक्तियों को कमजोर करेगा| यह भी तर्क दिया जाता है कि यदि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का रुख स्वीकार कर लिया जाता है, तो कैदियों और विचाराधीन कैदियों को मूल अधिकारों से वंचित कर दिया जाएगा और उनके पास कोई उपाय नहीं बचेगा| यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को अलेप्पी मेडिकल कॉलेज के एक कमरे में ले जाया गया, जहां उनसे कुछ दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करवाए गए, हालांकि, उसके हस्ताक्षर जबरन और उसकी स्वतंत्र सहमति के बिना प्राप्त किए गए थे|

43. यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता का वर्जिनिटी टेस्ट संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करता है| ***निलावती बेहरा बनाम राज्य*** *(1993) 2 एससीसी 746* और ***डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*** (*पूर्वोक्त*) पर भरोसा किया गया कि संप्रभु प्रतिरक्षा का सिद्धांत मूल अधिकार के उल्लंघन के लिए राज्य के दायित्व पर लागू नहीं होता है और यह संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत संवैधानिक उपचार के लिए कोई प्रतिरक्षा नहीं है जो मूल अधिकार के उल्लंघन के लिए मुआवजा देने को सक्षम बनाता है|

44. ***एस. नांबी नारायणन बनाम सिबी मैथ्यूज व अन्य*** *(2018) 10 एससीसी 804* में यह तर्क दिया जाता है कि ***डी.के. बसु अन्य पश्चिम बंगाल राज्य*** (*उपर्युक्त*) के मामले में निर्णय को अनुमोदन के साथ उद्धृत करने के बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि क्षतिपूर्ति के लिए सिविल मुकदमा की विचाराधीनता संवैधानिक न्यायालय को लोक विधि उपचार के अधीन क्षतिपूर्ति मंजूर करने से नहीं रोकेगी| यह भी माना जाता है कि प्रतिष्ठा किसी व्यक्ति की गरिमा के साथ जीने के उसके अधिकार का एक अभिन्न पहलू है|

45. यह कहा गया है कि याचीगण सं. 1 से 3 केंद्रीय जांच ब्यूरो के हाथों याचिकाकर्ता द्वारा अभिरक्षा के अंतर्गत सहन की गई यातना के लिए उसे क्षतिपूर्ति देने और पूर्वोक्त निर्णयों में उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि के आलोक में जाँच अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने के लिए आबद्ध हैं|

ii. प्रत्यर्थी की ओर से प्रस्तुतियां

46. प्रत्यर्थी सं. 1, केंद्रीय जांच ब्यूरो, ने जवाबी शपथ-पत्र के माध्यम से जवाब दायर किया, जिसमें यह कहा गया था कि याचिकाकर्ता पर किया गया वर्जिनिटी टेस्ट हत्या के मामले की जांच के लिए आवश्यक था| यह भी कहा गया है कि चिकित्सा जांच के दौरान, दो महिला आरक्षी याचिकाकर्ता के साथ थीं और उन्होंने

सहमति व्यक्त की थी और मेडिकल कॉलेज में महिला आरक्षियों के साथ गई थी साथ ही साथ चिकित्सा अधिकारी और केंद्रीय जांच ब्यूरो ने मीडिया और सार्वजनिक रूप से उनकी किसी भी जानकारी को उजागर नहीं करने के लिए अत्यधिक सतर्कता बरती थी| यह कहा गया है कि परामर्श कक्ष या स्त्री रोग विभाग के अंदर या बाहर किसी पुरुष अधिकारी की उपस्थिति नहीं थी जहां याचिकाकर्ता की चिकित्सीय जाँच की गई थी| यह भी कहा गया है कि चिकित्सा जांच से पहले, चिकित्सा अधिकारियों ने फिर से यह सुनिश्चित किया था कि याचिकाकर्ता की सुविज्ञ लिखित सहमति थी| यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को किसी भी तरह की जबरन चिकित्सा जांच से नहीं गुजरना पड़ा और जांच के तहत हत्या के मामले को हल करने के लिए याचिकाकर्ता के पिछले यौन इतिहास का पता लगाना आवश्यक था| यह कहा गया है कि यह परीक्षण दिनांक 26.11.2008 को आयोजित किए जाने के बाद ही है और जब याचिकाकर्ता को संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दिनांक 02.12.2008 को पेश किया गया था, तब याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आरोप लगाया था कि चिकित्सा परीक्षण उसकी सहमति के बिना किया गया था|

47. यह कहा गया है कि चूंकि यह मामला मीडिया में मीडिया के व्यक्तियों द्वारा रिपोर्ट किया गया था, और चूँकि अन्य सार्वजनिक व्यक्ति मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उपस्थित थे, जहां इस संबंध में बहस को याचिकाकर्ता

के अधिवक्ता द्वारा संबोधित किया गया था, केंद्रीय जांच ब्यूरो को मीडिया द्वारा इस मामले की रिपोर्टिंग के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है| यह भी कहा गया है कि दो महिला डॉक्टरों द्वारा याचिकाकर्ता की चिकित्सा जांच रिपोर्ट में सर्जिकल हस्तक्षेप का खुलासा किया गया था, जिसे उनके द्वारा 'हाइमेनोप्लास्टी' के रूप में व्यक्त किया गया था (दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत दर्ज बयान में)| यह कहा गया है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो ने याचिकाकर्ता को बदनाम नहीं किया है और यह कि याचिकाकर्ता की चिकित्सा जांच को याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार के उल्लंघन के रूप में नहीं माना जा सकता है और यह कि न्यायालय की अनुमति की आवश्यकता नहीं थी और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53 जांच अधिकारी को आरोपी को चिकित्सा जांच के लिए भेजने का अधिकार देती है| इसलिए, यह कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया गया है, इसलिए उन्हें मुआवजा देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है| यह भी कहा गया है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार किया था और मामले को बंद कर दिया था|

48. केंद्रीय जांच ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता कहते हैं कि इस प्रकार किया परीक्षण इसलिए किया गया था क्योंकि जाँच ने प्रश्नगत मामले को हल करने हेतु अभियुक्त पर इसे आवश्यक बना दिया था और उस समय पर, किसी अभियुक्त पर किए जा रहे ऐसे परीक्षण की संवैधानिक विधिमान्यता को असंवैधानिक घोषित नहीं किया गया था और वर्तमान में, किसी न्यायालय का ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं

है कि ऐसा परीक्षण किसी अभियुक्त पर नहीं किया जा सकता था, हालाँकि अनेक निर्णय हैं जिसमे ऐसा परीक्षण यौन हमले के पीड़ित पर नहीं किया जा सकता है।

49. याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर में, प्रत्यर्थी सं. 1 के प्रति-शपथपत्र में किए गए प्रकथनों को अस्वीकार कर दिया गया और यह दोहराया गया था कि केरल उच्च न्यायालय ने दिनांक 01.01.2009 के आदेश द्वारा इसके अनुच्छेद 88 में कहा था कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा किया गया कौमार्य परीक्षण पूरी तरह से अनावश्यक, दुर्भाग्यपूर्ण था और सार्वजनिक रूप से याचिकाकर्ता पर कीचड़ उछालने के अलावा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता था।

50. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के विद्वत अधिवक्ता का कहना है कि आयोग ने इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार किया था और याचिकाकर्ता का मामला निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ समाप्त कर दिया गया था :-

> "... माननीय न्यायालय ने पहले ही इस मामले को संज्ञान में ले लिया था। इसलिए, आयोग संशोधित एनएचआरसी (प्रक्रिया) विनियम, 1994 के विनियम 9 के अनुसार शिकायत को आगे बढ़ाने के लिए इच्छुक नहीं है। शिकायतकर्ता, यदि ऐसी राय है तो, मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोप को न्यायालय के संज्ञान में ला सकता है। इन टिप्पणियों के साथ मामले को बंद कर दिया गया है।..."

51. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के विद्वत अधिवक्ता का तर्क है कि आयोग राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (प्रक्रिया) विनियम, 1994 के विनियम 9 को ध्यान

में रखते हुए याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार करने की स्थिति में नहीं था, जो निम्नानुसार है :-

> "9. आयोग निम्नलिखित प्रकृति की शिकायतों को प्रारम्भ में ही खारिज कर सकता है -
> (xi) मामला किसी न्यायालय/अधिकरण के समक्ष विचाराधीन है।"

52. इसके समर्थन में, सिक्किम राज्य बनाम राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग 2021 एससीसी ऑनलाइन सिक्क 183 में निर्णय का अवलंब लिया गया है, जिसमें निम्नलिखित रूप से मत व्यक्त किया गया है :-

> "...18. संशोधित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (प्रक्रिया) विनियम, 1994, विनियम 9 में प्रावधान किया गया है कि कुछ दशाएं में शिकायतें सामान्य रूप से विचारणीय नहीं होती हैं। इसमें यह प्रावधान किया गया है कि आयोग निम्नानुसार विभिन्न प्रकार की शिकायतों को प्रारम्भ में ही खारिज कर सकता है:-
> (i) अपठनीय;
> (ii) अस्पष्ट, अनाम या छद्मनाम;
> (iii) तुच्छ या ओछा;
> (iv) अधिनियम की धारा 36(1) के तहत वर्जित;
> (v) अधिनियम की धारा 36(2) के तहत वर्जित;
> (vi) आरोप किसी लोक सेवक के खिलाफ नहीं है;
> (vii) उठाया गया मुद्दा सिविल विवाद से संबंधित है, जैसे कि संपत्ति के अधिकार, संविदात्मक बाध्यताएं और इसी तरह के अन्य मुद्दे;

(viii) उठाया गया मुद्दा सेवा संबंधी मामलों से संबंधित है;

(ix) उठाया गया मुद्दा श्रम/औद्योगिक विवादों से संबंधित है;

(x) आरोपों से मानवाधिकारों के उल्लंघन का कोई विशिष्ट मामला नहीं बनता है;

(xi) मामला किसी न्यायालय/अधिकरण के समक्ष विचाराधीन है;

(xii) मामला आयोग के न्यायिक-निर्णय/निर्णय के अंतर्गत आता है;

(xiii) जहां यह किसी अन्य प्राधिकारी को संबोधित शिकायत की प्रति मात्र है;

(xiv) मामला किसी अन्य आधार पर आयोग के कार्यक्षेत्र से बाहर है।"

19. विनियम 9(xi) ऐसे मामलों से संबंधित है जो न्यायालय या अधिकरण के समक्ष विचाराधीन हैं। जैसा कि अभिवचन किया गया है, स्वीकृत तथ्य यह प्रदर्शित नहीं करते हैं कि एनएचआरसी ने शिकायत को उस समय स्वीकार किया जब मामला इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन था। विनियम 9(xii) उस मामले से संबंधित है जो आयोग के न्यायिक-निर्णय या निर्णय के अंतर्गत आता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलें प्रारम्भ में ही रिट याचिका के खारिज होने से संबंधित हैं, जिस पर पहले ही ऊपर विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। इसलिए, यह आधार भी याचिकाकर्ता के मामले में मदद नहीं करता है।.."

iii. विश्लेषण और निष्कर्ष

53. वर्तमान रिट याचिका वर्ष 2009 में दायर की गई थी और इस रिट याचिका के विचाराधीन रहने के दौरान माननीय उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के कई निर्णय पारित हुए थे जिनमें "कौमार्य" या "दो-अंगुली" परीक्षण की संवैधानिक वैधता का न्यायनिर्णयन किया गया है और परीक्षण को असंवैधानिक घोषित किया गया है। विदेशी निर्णयों और अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के साथ इन पूर्व निर्णयों पर आगे आने वाले अनुच्छेदों में चर्चा की जाएगी।

<u>क. भारतीय पूर्व निर्णय</u>

54. लिल्लू बनाम हरियाणा राज्य (2013) 14 एससीसी 643 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "दो-अंगुली परीक्षण" को निम्नलिखित के विचारों के साथ यौन उत्पीड़न की पीड़िताओं की गरिमा, अखंडता और निजता के अधिकार का उल्लंघन माना है:-

> "7. जहां तक दो अंगुली परीक्षण का संबंध है, इस पर न्यायालय द्वारा गंभीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि बलात्कार पीड़िताओं की फोरेंसिक जांच के संचालन और व्याख्या के लिए ठोस मानक की आवश्यकता है।
>
> ******
>
> 13. आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966; शक्ति के अपराध और दुरुपयोग के पीड़ितों के लिए न्याय के बुनियादी सिद्धांतों की संयुक्त राष्ट्र की घोषणा 1985 को ध्यान में रखते हुए, बलात्कार सह चुके

लोग ऐसा कानूनी सहारा पाने के हकदार हैं जो उन्हें फिर से आघात नहीं पहुंचाता है या उनकी शारीरिक या मानसिक अखंडता और गरिमा का उल्लंघन नहीं करता है। वे इस तरह से चिकित्सा प्रक्रियाओं के भी हकदार हैं जो उनकी सहमति के अधिकार का सम्मान करती हैं। चिकित्सा प्रक्रियाओं को ऐसे तरीके से नहीं किया जाना चाहिए जिसमें क्रूर, अमानवीय, या अपमानजनक उपचार हो और लिंग आधारित हिंसा से निपटने के दौरान सर्वोपरि विचार स्वास्थ्य का होना चाहिए। राज्य यौन हिंसा सह चुके लोगों को ऐसी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है। उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उचित उपाय किए जाने चाहिए और उनकी निजता के साथ कोई मनमाना या गैरकानूनी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

14. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, निस्संदेह, दो अंगुली परीक्षण और इसकी व्याख्या बलात्कार पीड़ितों के निजता, शारीरिक और मानसिक अखंडता और गरिमा के अधिकार का उल्लंघन करता है। इस प्रकार, यह परीक्षण, भले ही रिपोर्ट सकारात्मक हो, वास्तव में,

सहमति की उपधारणा को जन्म नहीं दे सकता।..."

(जोर दिया गया)

55. उच्चतम न्यायालय ने री: लैंगिक अपराधों की प्रतिक्रिया में आपराधिक न्याय तंत्र का मूल्यांकन (2020) 18 SCC 540 में देश के सभी राज्यों और केंद्र

शासित प्रदेशों से अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रश्न पर स्थिति आख्या मांगी:-

> "17. इस प्रकार, हम निम्नलिखित के संबंध में स्थिति रिपोर्ट मांगना उचित समझते हैं :-
> ...(5) क्या चिकित्सा विशेषज्ञों ने प्रति-योनि परीक्षण को समाप्त कर दिया है जिसे आमतौर पर 'दो अंगुली परीक्षण' कहा जाता है और क्या इस संबंध में राज्यों द्वारा कोई निर्देश जारी किए गए हैं?..."

56. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***झारखंड राज्य बनाम शैलेन्द्र कुमार राय @ पांडव राय*** *2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1494*, वाले मामले में ***लिल्लू बनाम हरियाणा राज्य*** *(उपरोक्त)* और वर्ष 2014 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी *'दिशानिर्देश और नयाचार : यौन हिंसा उत्तरजीवियों/पीड़ितों के लिए चिकित्सा-कानूनी देखभाल'* का अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया कि कोई भी व्यक्ति जो "दो उंगली परीक्षण" करता है, वह निर्देशों का उल्लंघन करेगा सर्वोच्च न्यायालय और कदाचार का दोषी होगा। ये टिप्पणियां निम्नलिखित प्रकार से हैं :-

> "...64. पीड़िता की जांच करते समय, मेडिकल बोर्ड ने **यह निर्धारित करने के लिए** वह परीक्षण किया, जिसे **"दो उंगली परीक्षण"** कहा जाता है **कि क्या उसे संभोग करने की आदत थी या नहीं। इस न्यायालय ने बलात्कार और यौन उत्पीड़न के**

आरोप वाले मामलों में इस प्रतिगामी और आक्रामक परीक्षण के उपयोग की बार-बार निंदा की है। इस तथाकथित परीक्षण का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है और यह बलात्कार के आरोपों को न तो सही साबित करता है और न ही गलत साबित करता है। इसके बजाय यह उन महिलाओं को फिर से पीड़ित करता है और उन्हें फिर से आघात पहुंचाता है, जो संभवतः यौन उत्पीड़न का शिकार हुई हो सकती हैं, और यह उनकी गरिमा का अपमान है। "दो-उंगली परीक्षण" या प्री-वेजिनम टेस्ट नहीं किया जाना चाहिए।

* * * * *

66. यह निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के तत्व किसी विशेष मामले में मौजूद हैं यह असंगत है कि क्या किसी महिला को "यौन संभोग की आदत डाली गई है" या उसे "यौन संभोग की आदत है"। तथाकथित परीक्षण इस गलत धारणा पर आधारित है कि यौन रूप से सक्रिय महिला का बलात्कार नहीं किया जा सकता है। इस सच्चाई से आगे कुछ भी नहीं हो सकता है कि यह न्यायनिर्णयन करने के लिए कि क्या आरोपी ने उसके साथ बलात्कार किया था एक महिला का यौन इतिहास पूरी तरह से निरर्थक है। इसके अलावा, किसी महिला की गवाही का संभावित मूल्य उसके यौन इतिहास पर निर्भर नहीं करता है। यह पितृसत्तात्मक और लैंगिक सुझाव है कि किसी महिला पर विश्वास नहीं किया जा सकता जब वह कहती है कि उसके साथ

बलात्कार किया गया था, केवल इस कारण से कि वह यौन रूप से सक्रिय है।

67. विधानमंडल ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से मान्यता दी जब इसने आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 को अधिनियमित किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ धारा 53क को शामिल करने के लिए साक्ष्य अधिनियम में संशोधन किया गया। साक्ष्य अधिनियम की धारा 53क के संदर्भ में, किसी पीड़िता के चरित्र या किसी व्यक्ति के साथ उसके पूर्व के यौन अनुभव का साक्ष्य यौन अपराधों के अभियोजन में सहमति या सहमति की गुणवत्ता के मुद्दे के लिए प्रासंगिक नहीं होगा।

68. **स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने यौन उत्पीड़न के मामलों में स्वास्थ्य प्रदाताओं के लिए दिशा-निर्देश जारी किए थे। ये दिशानिर्देश "दो-उंगली" परीक्षण के प्रयोग को प्रतिबंधित करते हैं:-**

> "आम लोगों द्वारा आमतौर पर "दो उंगली परीक्षण" के रूप में संदर्भित पर-वेजिनम परीक्षण, बलात्कार/यौन हिंसा स्थापित करने के लिए आयोजित नहीं किया जाना चाहिए और योनि के आकार का यौन हिंसा के मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पर वेजिनम परीक्षण चिकित्सकीय रूप से इंगित किए जाने पर केवल वयस्क महिलाओं में किया जा सकता है।
>
> **योनिच्छद की स्थिति अप्रासंगिक है क्योंकि अन्य बातों के साथ-साथ साइकिल चलाने, सवारी या हस्तमैथुन जैसे**

कई कारणों से योनिच्छद फट सकता है। एक अक्षत योनिच्छद यौन हिंसा की संभावना को खारिज नहीं करता है, और एक फटा योनिच्छद पिछले यौन संभोग को साबित नहीं करता है। इसलिए यौन हिंसा के मामलों में जांच के निष्कर्षों का प्रलेखन करते समय योनिच्छद को जननांग के किसी भी अन्य हिस्से की तरह माना जाना चाहिए। केवल उसी का प्रलेखन किया जाना चाहिए जो हमले की घटना के लिए प्रासंगिक हैं (जैसे ताजा चीरा, रक्तस्राव, सूजन आदि)।"

69. हालांकि इस मामले में "दो-उंगली परीक्षण" एक दशक से अधिक समय पहले किया गया था, लेकिन यह खेदजनक तथ्य है कि यह आज भी जारी है।

* * * * *

72. कोई भी व्यक्ति जो इस न्यायालय के निर्देशों का उल्लंघन करते हुए "दो-उंगली परीक्षण" या पर वेजिनम परीक्षण (कथित रूप से यौन हमला किए गए किसी व्यक्ति की जांच करते समय) करता है, वह कदाचार का दोषी होगा।

(जोर दिया गया)

57. ***गुजरात राज्य बनाम रमेशचंद्र रामभाई पांचाल,*** *2020 एससीसी ऑनलाइन गुज 114*, वाले मामले में "दो-उंगली परीक्षण" या "कौमार्य परीक्षण" को निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ असंवैधानिक घोषित किया गया था:-

"...25. चिकित्सा प्रमाणपत्र, प्रदर्श-10 की की विषय-वस्तु काफी परेशान करने वाली है। ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़िता की चिकित्सकीय जांच के दौरान, दो- उंगली परीक्षण किया गया था।

26. दो-उंगली परीक्षण जिसे पीवी (पर वेजिनम) के रूप में भी जाना जाता है, योनि की मांसपेशियों की शिथिलता पता लगाने और यह पता लगाने के लिए कि क्या योनिच्छद लचीला है एक महिला की योनि में प्रवेश वाला शारीरिक परीक्षण है। इसमें चिकित्सक महिला की योनि में दो उंगलियां डालता है और जिस आसानी से उंगलियां उसमें प्रवेश करती हैं, उसे उसके यौन अनुभव से अनुक्रमानुपाती माना जाता है। इस प्रकार, यदि उंगलियां आसानी से अंदर फिसलती हैं तो महिला को यौन रूप से सक्रिय माना जाता है और यदि उंगलियां प्रवेश करने में विफल रहती हैं या प्रवेश करने में कठिनाई महसूस होती है, तो यह माना जाता है कि उसका योनिच्छद अक्षत है, जो उसके कुंवारी होने का प्रमाण है।

* * * * *

29. यह परीक्षण स्वयं ही यौन हमले के संदर्भ में परीक्षण के सबसे अवैज्ञानिक तरीकों में से एक है और इसका कोई फोरेंसिक मूल्य नहीं है। यौन हमले से पूर्व पीड़िता को यौन संभोग की आदत थी या नहीं, इस बात का इस पर पूर्ण रूप से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि बलात्कार के समय पीड़िता ने सहमति व्यक्त की थी या नहीं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 155 इस आधार पर बलात्कार पीड़िता की विश्वसनीयता से समझौता करने

की अनुमति नहीं देती कि वह आम तौर पर अनैतिक चरित्र की है।

30. **दो-उंगली परीक्षण असंवैधानिक है। यह पीड़िता की निजता, शारीरिक और मानसिक अखंडता और गरिमा के अधिकार का उल्लंघन करता है।** इस प्रकार, यह परीक्षण, भले ही रिपोर्ट सकारात्मक हो, निश्चित परिणाम के रूप में, सहमति की उपधारणा को जन्म नहीं दे सकता है।

* * * * *

36. निःसंदेह, दो-उंगली परीक्षण और इसकी व्याख्या बलात्कार पीड़िताओं के निजता, शारीरिक और मानसिक अखंडता और गरिमा के अधिकार का उल्लंघन करता है। इस प्रकार, यह परीक्षण, भले ही रिपोर्ट सकारात्मक हो, निश्चित परिणाम के रूप में, सहमति की उपधारणा को जन्म नहीं दे सकता है। **चिकित्सा प्रक्रियाओं को इस तरह से नहीं किया जाना चाहिए जो क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक हो और स्वास्थ्य लिंग आधारित हिंसा के संबंध में कार्रवाई करते समय सर्वोपरि होना चाहिए।** राज्य यौन हिंसा की पीड़िताओं को ऐसी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है। उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उचित उपाय किए जाने चाहिए और उनकी गोपनीयता में कोई मनमाना या गैरकानूनी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध 1966 और अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के पीड़ितों के लिए न्याय के बुनियादी सिद्धांतों की संयुक्त राष्ट्र की घोषणा 1985, को ध्यान

> में रखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि, बलात्कार पीड़िताओं को ऐसे कानून का सहारा लेने का अधिकार है जो उन्हें फिर से आघात नहीं पहुंचाता है या उनकी शारीरिक या मानसिक अखंडता और गरिमा का उल्लंघन नहीं करता है। वे इस तरह से आयोजित की जाने वाली चिकित्सकीय प्रक्रियाओं की भी हकदार हैं जो उनके सहमति के अधिकार का सम्मान करती हों।
>
> (जोर दिया गया)

58. ***राजीव गांधी बनाम राज्य*** *2022 एससीसी ऑनलाइन मैड 1770*, में मद्रास उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने तमिलनाडु सरकार को निर्देश दिया है कि वह दुष्कर्म पीड़िताओं के 'दो-अंगुली परीक्षण' पर तत्काल प्रतिबंध लगाए।

> "20. इस मामले का निपटा करने से पूर्व, हम महसूस करते हैं कि दो उंगली परीक्षण की प्रथा को समाप्त करना हमारे लिए आवश्यक है। हमने पाया कि दो उंगली परीक्षण का उपयोग यौन अपराधों से जुड़े मामलों में किया जा रहा है, विशेष रूप से नाबालिग पीड़िताओं पर। 2013 में ही माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि दो उंगली परीक्षण और इसकी व्याख्या बलात्कार पीड़िताओं की निजता, शारीरिक और मानसिक अखंडता और गरिमा के अधिकार का उल्लंघन करती है।
>
> * * * * *
>
> 24. उपरोक्त न्यायिक घोषणाओं को ध्यान में रखते हुए, हमें कोई संदेह नहीं है कि दो उंगली परीक्षण को जारी रखने की

अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसलिए, हम राज्य सरकार को चिकित्सा पेशेवरों द्वारा यौन अपराधों के पीड़िताओं पर दो उंगली परीक्षण के उपयोग पर तुरंत प्रतिबंध लगाने का निर्देश जारी करते हैं।"

59. उपरोक्त की तर्ज पर ***"आपराधिक विधि, 2013 में संशोधनों पर समिति की रिपोर्ट"***, जिसकी अध्यक्षता न्यायामूर्ति (सेवानिवृत्त) जे.एस. वर्मा ने की थी, में कौमार्य परीक्षणों के संचालन के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां और सुझाव दिए थे:-

"9. यौन उत्पीड़न हुआ या नहीं, यह एक कानूनी मुद्दा है और इसका कोई चिकित्सकीय निदान नहीं है। परिणामस्वरूप, चिकित्सकों को चिकित्सकीय जांच के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि बलात्कार हुआ था या नहीं। केवल चिकित्सकीय निष्कर्षों के संबंध में निष्कर्षों को चिकित्सकीय रिपोर्ट में दर्ज किया जाना चाहिए।

10. यह रेखांकित करना महत्वपूर्ण है कि योनि के आकार का यौन हिंसा के मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, और इसलिए योनि की मांसपेशियों की शिथिलता का पता लगाने के लिए एक परीक्षण, जिसे आमतौर पर दो उंगली परीक्षण के रूप में जाना जाता है नहीं किया जाना चाहिए। इस परीक्षण के आधार पर मत/निष्कर्ष जैसे कि 'यौन संभोग की आदत होना' नहीं दिए जाने चाहिए और यह कानून द्वारा निषिद्ध है।

11. नियमित रूप से, योनिच्छद की स्थिति पर बहुत ध्यान दिया जाता है। **"उंगली परीक्षण" भी योनिच्छद का लचीलापन देखने के लिए किया जाता है। हालांकि यह काफी हद तक अप्रासंगिक है क्योंकि योनिच्छद कई कारणों से फट सकता है। एक अक्षत योनिच्छद यौन हमले की संभावना को नकार नहीं सकता है, और एक फटे हुए योनिच्छद से पूर्व का यौन संभोग साबित नहीं होता है।** इसलिए यौन हमले के मामलों में जांच के निष्कर्षों का प्रलेखन करते समय योनिच्छद को जननांग के किसी भी अन्य हिस्से की तरह माना जाना चाहिए। केवल वही जो हमले की घटना से संबंधित हैं (जैसे ताजा चीरा, रक्तस्राव, सूजन आदि), का प्रलेखन किया जाना चाहिए..."

(जोर दिया गया)

ख. <u>कौमार्य परीक्षण पर अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण</u>

60. भारत द्वारा अनुसमर्थित 'महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन पर सम्मेलन, 1979' में निम्नानुसार प्रावधान किया गया है :-

"अनुच्छेद 5-

जो राज्य पक्षकार हैं वे सभी उचित उपाय करेंगे :-

(क) पुरुषों और महिलाओं के आचरण की सामाजिक और सांस्कृतिक शैली को संशोधित करना, ताकि पूर्वाग्रहों और प्रथाओं और अन्य सभी प्रथाओं को समाप्त किया जा सके जो पुरुषों

और महिलाओं में से किसी एक की हीनता या श्रेष्ठता के विचार पर या रूढ़िबद्ध भूमिकाओं पर आधारित हैं।"

61. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार कार्यालय, विश्व स्वास्थ्य संगठन और संयुक्त राष्ट्र महिला द्वारा वर्ष 2018 में ***"कौमार्य परीक्षण को समाप्त करना : एक अंतर-एजेंसी बयान"*** शीर्षक से एक संयुक्त बयान जारी किया गया जिसमें सभी प्रकार के कौमार्य परीक्षण पर प्रतिबंध लगाने का आह्वान किया गया था, जो अवैज्ञानिक, चिकित्सकीय रूप से अनावश्यक और अविश्वसनीय है। बयान का निष्कर्ष वला भाग इस प्रकार है:-

"...यह बयान स्थापित करता है कि **कौमार्य परीक्षण अवैज्ञानिक, चिकित्सकीय रूप से अनावश्यक और अविश्वसनीय है यह महिलाओं के मानवाधिकारों का उल्लंघन करता है और अल्पकालिक और दीर्घकालिक प्रतिकूल स्वास्थ्य परिणामों के साथ जुड़ा हुआ है।** बयान में **कौमार्य परीक्षण के सभी रूपों का उन्मूलन करने** के प्रयासों का समर्थन करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है, **जिससे दुनिया भर में महिलाओं और लड़कियों के मानवाधिकारों को बरकरार रखा जा सके।**

बयान में सरकार; स्वास्थ्य पेशेवरों और उनके संघों; अंतरराष्ट्रीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्वास्थ्य एजेंसियों और व्यापक समुदायों से आग्रह किया गया है कि वे **कौमार्य परीक्षण पर प्रतिबंध लगाने की पहल** और राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य पेशेवरों, सार्वजनिक अधिकारियों और समुदाय के सदस्यों के लिए दिशानिर्देशों का

सृजन करें, विशेष रूप से उन देशों में जहां कौमार्य परीक्षण व्यापक रूप से किया जाता है।

चिकित्सा पद्धति से कौमार्य परीक्षण को समाप्त करने के लिए विशिष्ट रणनीतियां :-

चिकित्सा प्रदाताओं और उनके संघों को अनुसंधान के बारे में पता होना चाहिए जो दर्शाता है कि कौमार्य परीक्षण में कोई वैज्ञानिक योग्यता नहीं है और यह पूर्व के योनि प्रवेश या कौमार्य से अतिरिक्त कुछ और निर्धारण नहीं कर सकता है। उन्हें कौमार्य परीक्षण के स्वास्थ्य और मानवाधिकारों के परिणामों को भी जानना चाहिए और उन्हें इस अभ्यास को करना या इसका कभी समर्थन नहीं करना चाहिए।

समुदायों को जागरूकता अभियानों का नेतृत्व करना चाहिए जो कौमार्य से संबंधित मिथकों और कौमार्य परीक्षण के अभ्यास को बनाए रखने वाले हानिकारक सामाजिक मानदंडों को चुनौती देते हों।

सरकारों और स्वास्थ्य अधिकारियों को कौमार्य परीक्षण के निरंतर उन्मूलन के लिए सहायक विधायी और नीतिगत ढांचा लागू करना चाहिए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन और अनुमोदन करने वाली एजेंसियां सभी महिलाओं और लड़कियों, समुदायों, संगठनों और राष्ट्रीय सरकारों को कौमार्य परीक्षण के उन्मूलन में समर्थन देने के लिए अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि करती हैं।

(जोर दिया गया)

ग. <u>क्या 'वर्जिनिटी टेस्ट' दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की खंड 53 के अंतर्गत आता है?</u>

62. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दंड प्रक्रिया की धारा 53 के तहत जांच एजेंसी याचिकाकर्ता की चिकित्सा जांच कराने के अपने अधिकार के भीतर थी क्योंकि वह जांच के तहत आरोपी था।

63. इस संबंध में, वर्तमान संदर्भ को निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा, अभियुक्त व्यक्तियों की चिकित्सीय परीक्षा के संबंध में विधि के उपबंधों पर चर्चा करना भी सुसंगत होगा। यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या कोई कानूनी विधि अभिरक्षा में किसी महिला अभियुक्त पर कौमार्य या दो अंगुली परीक्षण आदेश की अनुज्ञा देती है,

64. **दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53** ऐसे व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा की अवधारणा करती है जिसे ऐसी प्रकृति का अपराध करने के लिए गिरफ्तार किया गया है और ऐसी परिस्थितियों में किए जाने का अभिकथन किया गया है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि उस व्यक्ति की परीक्षा किसी अपराध के किए जाने के बारे में साक्ष्य का वहन करेगी। ऐसी जाँच किसी पुलिस अधिकारी के अनुरोध पर की जा सकती है। दूसरी ओर, धारा 54 एक सामान्य नियम का उपबंध करती है कि इस प्रकार गिरफ्तार किए गए प्रत्येक व्यक्ति की

गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात् चिकित्सीय जाँच की जानी अपेक्षित है। दंड प्रक्रिया संहिता में वर्ष 2005 में एक संशोधन के माध्यम से शामिल किए गए इन प्रावधानों के स्पष्टीकरण में चिकित्सा जाँच की गुंजाइश प्रदान की गई है। त्वरित संदर्भ के लिए उक्त प्रावधानों को नीचे उद्धृत किया गया हैः

"53. पुलिस अधिकारी के अनुरोध पर चिकित्सा व्यवसायी द्वारा अभियुक्त की परीक्षा।- -

(1) जब कोई व्यक्ति इस तरह का कोई अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जाता है और ऐसी परिस्थितियों में किए जाने का अभिकथन किया जाता है कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि उस व्यक्ति की परीक्षा से अपराध के किए जाने के बारे में साक्ष्य प्राप्त होगा,

यह एक पंजीकृत चिकित्सक के लिए वैध होगा, जो एक पुलिस अधिकारी के अनुरोध पर कार्य करता है, जो उप निरीक्षक के पद से नीचे नहीं होना चाहिए है, और कोई भी व्यक्ति उसकी सहायता और उसके निर्देश के तहत सद्भाव में कार्य करे, गिरफ्तार किया गए व्यक्ति के इस तरह की परीक्षा करना वैध होगा। जैसा की यथोचित आवश्यक हो| उन तथ्यों को सुनिश्चित करने के लिए जो इस तरह के सबूत दे सकते हैं और उस उद्देश्य के लिए यथोचित रूप से आवश्यक बल का उपयोग कर सके।

जब कभी इस धारा के तहत किसी महिला के शरीर की परीक्षा की जानी है तो परीक्षा केवल महिला पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा या उसके पर्यवेक्षण में की जाएगी।

व्याख्या. इस धारा में और धारा 53 क और 54 में -

(क) 'परीक्षा' में डीएनए प्रोफाइलिंग और ऐसे अन्य परीक्षणों सहित आधुनिक और वैज्ञानिक तकनीकों के उपयोग द्वारा रक्त, रक्त-धब्बे, वीर्य, यौन अपराधों की दशा में स्वैब, थूक और पसीना, बालों के नमूने और उंगली के नाखून की क्लिपिंग की जाँच शामिल होगी जो पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी किसी विशेष मामले में आवश्यक समझता है

(ख) " पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी " से ऐसा चिकित्सा व्यवसायी अभिप्रेत है जिसके पास भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1956 (1956 का 102) की धारा 2 के धारा (ज) में परिभाषित कोई चिकित्सा अर्हता है और जिसका नाम राज्य चिकित्सा रजिस्टर में दर्ज किया गया है|

54 गिरफ्तार व्यक्ति की परीक्षा चिकित्सा अधिकारी के द्वारा।-

(1) जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है, तो उसकी जाँच केंद्र या राज्य सरकार की सेवा में चिकित्सा अधिकारी द्वारा की जाएगी, और यदि चिकित्सा अधिकारी उपलब्ध नहीं है, तो गिरफ्तारी के तुरंत बाद एक पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा की जाएगीः

परन्तु जहां गिरफ्तार किया गया व्यक्ति महिला है वहां शरीर की परीक्षा केवल महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा या उसके पर्यवेक्षण में और यदि महिला चिकित्सा अधिकारी उपलब्ध नहीं है तो किसी महिला पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा की जाएगी।

(2) इस प्रकार गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की परीक्षा करने वाला चिकित्सा अधिकारी या पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी इस प्रकार की परीक्षा का अभिलेख तैयार करेगा जिसमें गिरफ्तार किए गए व्यक्ति पर किसी चोटों या हिंसा के निशान का उल्लेख किया गया है और उस अनुमानित समय का उल्लेख किया गया है जब ऐसी चोट या निशान लगाए जा सकते हैं|

(3) जहां उपधारा (1) के अधीन कोई परीक्षा की जाती है वहां ऐसी परीक्षा की रिपोर्ट की एक प्रति, यथास्थिति, चिकित्सा अधिकारी या पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति या ऐसे गिरफ्तार व्यक्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति को दी जाएगी।

(जोर दिया गया)

65. सेल्वी एंड अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2010) 7 एस. सी. सी. 263 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सहमति के बिना किसी अभियुक्त व्यक्ति के स्वापक ओषधि-विश्लेषण की संवैधानिक विधिमान्यता पर विचार करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53 और 54 की स्कीम की परीक्षा की, जिसके सुसंगत संप्रेक्षण निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किए गए हैं

“145. इस मोड़ पर, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 53,53-क और 54 के स्पष्टीकरण को विशेष रूप से शारीरिक पदार्थों के निष्कर्षण के संबंध में चिकित्सा परीक्षा की व्याप्ति को स्पष्ट करने के लिए 2005 में संशोधित किया गया था।

146. प्रत्यर्थीगण ने आग्रह किया है कि आक्षेपित तकनीकों को सुसंगत उपबंधों अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53 और 54 में पढ़ा जाना चाहिए। यह भी स्पष्ट किया गया है कि इस तरह की चिकित्सा जाँच का निर्देश देने का अधिकार न्यायालय के पास है।

जैसा कि पहले बताया गया है, जांच के दौरान गिरफ्तार व्यक्ति की चिकित्सकीय जांच का निर्देश दिया जा सकता है, या तो जांच अधिकारी या गिरफ्तार व्यक्ति के कहने पर। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यह न्यायालय की शक्तियों के भीतर है कि वह इस तरह की चिकित्सकीय जांच का निर्देश खुद दे सकती है। ऐसी परीक्षा ऐसे व्यक्ति के संबंध में भी निदेशित की जा सकती है जिसे जमानत पर अभिरक्षा से छोड़ा गया है और साथ ही ऐसे व्यक्ति के संबंध में भी जिसे अग्रिम जमानत दी गई हो। इसके अतिरिक्त, धारा 53 में चिकित्सीय परीक्षा आयोजित करने के लिए 'युक्तियुक्त रूप से आवश्यक बल' के उपयोग की अवधारणा की गई है। इसका मतलब है कि

एक बार जब न्यायालय ने किसी विशेष व्यक्ति की चिकित्सा जाँच का निर्देश दिया है, तो यह जाँचकर्ताओं और परीक्षकों की

शक्तियों के भीतर है कि वे इसे आयोजित करने के लिए उचित मात्रा में शारीरिक बल का सहारा लें।

147. विवादास्पद उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता (2005 में संशोधित) की धारा 53,53-क और 54 का स्पष्टीकरण है जिसे ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है। यह प्रतिवाद किया गया है कि 'डी. एन. ए. प्रोफाइलिंग और ऐसे अन्य परीक्षणों सहित आधुनिक और वैज्ञानिक तकनीकों' वाक्यांश का उदारतापूर्वक आक्षेपित तकनीकों को सम्मिलित करने के लिए अर्थ लगाया जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया कि भले ही नारको एनालिसिस तकनीक, पॉलीग्राफ परीक्षा और बीईएपी परीक्षण का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन उन्हें विधायी इरादे की जाँच करके पढ़ा जा सकता है। वाक्यांश 'और ऐसे अन्य परीक्षणों' पर जोर देते हुए यह तर्क दिया गया कि संसद ने एक दृष्टिकोण चुना था जहां 'आधुनिक और वैज्ञानिक तकनीकों' की सूची पर विचार किया गया था और यह व्याख्यात्मक था यह विस्तृत नहीं था। यह भी तर्क दिया गया कि किसी भी मामले में, वैधानिक प्रावधानों का वैज्ञानिक प्रगति के प्रकाश में उदारतापूर्वक अर्थ लगाया जा सकता है। नई प्रौद्योगिकियों के विकास के साथ, उनके उपयोग को पुराने कानूनों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है जिन्हें समान उद्देश्यों के लिए उपयोग की गई पुरानी प्रौद्योगिकियों को विनियमित करने के लिए तैयार किया गया था।

148. दूसरी ओर, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि संसद 2005 के संशोधन के समय आक्षेपित तकनीकों से अच्छी

तरह अवगत थी और जानबूझकर उन्हें द.प्र.सं. की धारा 53, 53-क और 54 के संशोधित स्पष्टीकरण में शामिल नहीं करने का चयन किया। यह तर्क दिया गया था कि इस विकल्प ने शंसापत्र कृत्यों और भौतिक साक्ष्य के बीच अंतर को मान्यता दी थी। जबकि रक्त, वीर्य, थूक, पसीना, बाल और उंगलियों के नाखून की कतरन जैसे शारीरिक पदार्थों को आसानी से शारीरिक साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है प्रश्नगत तकनीकों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इस तर्क का "समान प्रकार और प्रकृति" के नियम को लागू करके समर्थन किया गया था जिसका उपयोग कानूनों की व्याख्या में किया जाता है। इस नियम में यह प्रावधान है कि सामान्य शब्दों का अर्थ जो सांविधिक उपबंध में विशिष्ट शब्दों का पालन करते हैं का अर्थान्वयन उन विशिष्ट शब्दों के बीच समानता के आलोक में किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, प्रगणित पदार्थ भौतिक साक्ष्य के सभी उदाहरण हैं। अतः 'और ऐसे अन्य परीक्षण' शब्दों का, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53, 53-क और 54 के स्पष्टीकरण में प्रकट होते का यह अर्थ लगाया जाना चाहिए कि इसमें शारीरिक साक्ष्य की परीक्षा शामिल की जाए किंतु परिसाक्ष्यीय संबंधी कार्यों की परीक्षा नहीं।

149. हम इस विचार की ओर प्रवृत्त हैं कि आक्षेपित परीक्षणों के परिणामों को आत्म-दोषारोपण के विरुद्ध अधिकार उत्पन्न करने के प्रयोजन के लिए परिसाक्ष्यीय कार्यों के रूप में माना जाना चाहिए। **अतः यह कहना विवेकपूर्ण होगा कि वाक्यांश 'और ऐसे अन्य परीक्षणों' [जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53, 53-क और**

54 के स्पष्टीकरण में दिखाई देते हैं] को पढ़ा जाना चाहिए ताकि इसका अर्थ केवल उन परीक्षणों को शामिल करने के लिए सीमित किया जा सके जिनमें शारीरिक साक्ष्य की परीक्षा शामिल है। इस तर्क के अनुसरण में, हम "समान प्रकार और प्रकृति" के नियम की प्रयोज्यता के बारे में अपीलकर्ता के तर्क से सहमत हैं यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53, 53-क और 54 के स्पष्टीकरण में चिकित्सीय परीक्षा के निश्चित अन्य रूपों की गणना नहीं की गई है जिसमें अन्य कार्यों के साथ-साथ मानसिक जाँच जैसे परिसाक्ष्य संबंधी कार्य शामिल हैं। यह दर्शाता है कि इस प्रावधान में संशोधन भौतिक पदार्थों की जाँच और परिसाक्ष्य कार्यों के बीच एक तार्किक अंतर द्वारा सूचित किया गया था।

* * * * *

152. इस चर्चा के आलोक में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53, 53-क और 54 के संशोधित स्पष्टीकरण की गतिशील व्याख्या में कुछ स्पष्ट बाधाएं हैं। **सर्वप्रथम, प्रश्नगत सामान्य शब्दों अर्थात् 'और ऐसे अन्य परीक्षणों' को साधारणतया उन परीक्षणों को शामिल करने के लिए पढ़ा जाना चाहिए जो चिकित्सा परीक्षा के अन्य रूपों के रूप में विनिर्दिष्ट किए गए हैं।** क्योंकि सभी स्पष्ट संदर्भ शारीरिक पदार्थों की परीक्षा के लिए हैं, हम आक्षेपित परीक्षणों को शामिल करने के लिए उक्त वाक्यांश का आसानी से अर्थ नहीं लगा सकते क्योंकि बाद वाले में परिसाक्ष्य प्रतिक्रियाएं शामिल प्रतीत होती हैं। दूसरा, आक्षेपित तकनीकों का अनिवार्य

> प्रबंध त्वरित जाँच सुनिश्चित करने के लिए अकेला तरीका नहीं है है। इसके अलावा, एक सुरक्षित अनुमान यह भी है कि संसद को आक्षेपित तकनीकों के अस्तित्व के बारे में अच्छी तरह से पता था, लेकिन जानबूझकर उन्हें नहीं गिना गया। इसलिए, हमारे समक्ष प्रस्तुत सामग्रियों की समग्र समझ के आधार पर, हम इस दृष्टिकोण की ओर झुके हुए हैं कि आक्षेपित परीक्षणों, अर्थात् नार्कोएनालिसिस तकनीक, पॉलीग्राफ परीक्षा और बीईएपी परीक्षण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत 'चिकित्सा परीक्षा' के उपबंधों में नहीं पढ़ा जाना चाहिए।
>
> (जोर दिया गया)

66. उपर्युक्त उपबंधों के केवल अवलोकन से यह प्रकट होता है कि प्रथमतः, कौमार्य परीक्षण का धारा 53 के 'स्पष्टीकरण' में किसी अभियुक्त व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा में उपयोग की जाने वाली तकनीक के रूप में कोई उल्लेख नहीं किया गया है जिससे कि उन तथ्यों का पता लगाया जा सके जो साक्ष्य का प्रदान कर सकते हैं। यौन अपराधों से संबंधित जाँच में उपयोग की जाने वाली तकनीकों के अलावा, डीएनए प्रोफाइलिंग सहित आधुनिक और वैज्ञानिक तकनीकों के उपयोग द्वारा थूक और पसीने, बालों के नमूनों और उंगलियों के नाखूनों की क्लिपिंग की जाँच जैसी निश्चित विधियों और तकनीकों का उल्लेख किया गया है। दूसरा, भारतीय संसद ने दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005 द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53 का 'स्पष्टीकरण' पेश करते हुए और

चिकित्सा जाँच के कई रूपों को सूचीबद्ध करते हुए इसकी परिधि के भीतर और अधिक तकनीकों को शामिल करने की गुंजाइश छोड़ी। हालांकि, जैसा कि शीर्ष न्यायालय द्वारा **सेल्वी एंड अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (उपर्युक्त)** में अभिनिर्धारित किया गया है विषय क्षेत्र को उक्त "समान प्रकार और प्रकृति" के नियम द्वारा शासित होगा। शीर्ष न्यायालय के अनुसार, 'इस तरह के अन्य परीक्षणों' शब्द का अर्थ उन परीक्षणों के रूप में माना जाना चाहिए और उन परीक्षणों को शामिल किया जाना चाहिए जो चिकित्सा जाँच के अन्य रूपों के रूप में उसी श्रेणी में हो हैं जो निर्दिष्ट किया गया है। संक्षेप में, "समान प्रकार और प्रकृति" का नियम यह आदेश करता है कि कानून के प्रावधान में विशिष्ट शब्दों का पालन करने वाले सामान्य शब्दों का अर्थ उन विशिष्ट शब्दों के अर्थ और आशय के प्रकाश में लगाया जाना चाहिए। धारा 53 के 'स्पष्टीकरण' को पढ़ने से पता चलता है कि यह *'आधुनिक और वैज्ञानिक तकनीकों के उपयोग'* से किसी आरोपी व्यक्ति की चिकित्सा जाँच को अनिवार्य बनाता है। यहां यह कहना असंगत नहीं होगा कि परीक्षा के किसी भी विस्तार से 'कौमार्य परीक्षण' संभवतः उक्त उपबंध के अधीन नहीं आ सकता। कौमार्य परीक्षण न तो आधुनिक है और न ही वैज्ञानिक, बल्कि प्राचीन और अतार्किक है। आधुनिक विज्ञान और चिकित्सा विधि महिलाओं पर इस तरह के परीक्षणों के संचालन को अस्वीकार करती है, जैसा कि पूर्ववर्ती पैरा में पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

67. इस संदर्भ में, चिकित्सा न्यायशास्त्र पर एक प्राधिकृत संदर्भ पुस्तक अर्थात् **मेडिकल ज्यूरिस्प्रूडेंस एंड टॉक्सिकोलॉजी की पाठ्यपुस्तक, के लेखक डॉ.** जयसिंह पी. मोदी, वर्ष 2018 में संशोधित किया गया, ने असंवेदनशील और अपमानजनक चिकित्सा प्रथाओं से दूर रहने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला, जो इस प्रकार हैः

> "यह एक महिला की स्थिति के लिए अपमानजनक है कि उसे महिला के कौमार्य का परीक्षण करवाने के लिए न्यायालय के आदेशों से मजबूर किया जाए और इसे निजता के गंभीर खतरे के रूप में लिया जाना चाहिए, एक प्यारा मौलिक अधिकार। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के संदर्भ में पुस्तक में अन्यत्र वर्णित डी. एन. ए. परीक्षण की परिसाक्ष्य बाध्यताएं (FORTIONRANY) कौमार्य का परीक्षण पर भी लागू होंगे। डीएनए टेस्ट जो वैज्ञानिक है और 99.99 प्रतिशत सटीकता प्रदान करता है के विपरीत वर्जिनिटी, जहां गर्भावस्था या बच्चे का जन्म नहीं होता है, **कभी निर्णायक नहीं हो सकता। जहां दं.प्र.सं. की धारा 53 आपराधिक जाँच के दौरान रक्त या मूत्र के नमूने लेने की अनुमति देती है,** सत्य को उजागर करने के झूठे आधार पर महिला शरीर के नैदानिक उल्लंघन की कोई गुंजाइश नहीं है। एक अन्य उदाहरण जहां न्यायालयों ने ऐसी किसी भी चिकित्सा पद्धति को अस्वीकार कर दिया है जो निजता का अतिक्रमण करती है और घृणित मानी जाती है, यौन दुरुपयोग के मामलों में महिला के पिछले यौन आचरण का आकलन करने के लिए 'दो उंगलियों की

जाँच' को खारिज करने की आवश्यकता है। इसी कारण से कौमार्य का परीक्षण को भी खारिज कर दिया जाएगा।

(जोर दिया गया)

घ. <u>अभिरक्षा सम्मान बनाम कौमार्य का परीक्षण की संवैधानिक वैधता</u>

68. यौन उत्पीड़न के पीड़ितों के मामलों में कौमार्य परीक्षण की संवैधानिक वैधता से संबंधित प्रश्न अब एकीकृत नहीं है, क्योंकि यह पहले से ही **लिलु बनाम हरियाणा राज्य (ऊपर) और झारधारा राज्य बनाम शैलेंद्र कुमार राय @पांडव राय (ऊपर)** वाले मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया है। हालांकि, इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया एक सवाल यह था कि उपरोक्त न्यायिक घोषणाएं यौन हमले के पीड़ितों का कौमार्य का परीक्षण करने के संबंध में हैं ताकि उनकी गरिमा से समझौता न हो और गोपनीयता और गरिमा के उनके मूल अधिकारों का उल्लंघन न हो और अभिरक्षा या पूछताछ के तहत किसी महिला के साथ न हो।

69. **अब, इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह है कि क्या किसी अपराध के जाँच के दौरान किसी महिला अभियुक्त का ऐसा परीक्षण किए जाने की दशा में कौमार्य परीक्षण भी असंवैधानिक होगा।**

70. किसी व्यक्ति के मूल अधिकार से संबंधित कानूनों के बारे में ऐसे निर्णयों की सूची में विचार किया गया है जो सर्वविदित हैं। इस निर्णय पर आज की तारीख तक सुनाया गया ऐसे हर निर्णय का विस्तार से वर्णन करने का बोझ नहीं होगा|

इसके अलावा, आरोपी व्यक्तियों और कैदियों के मूल अधिकारों के बारे में स्थिति के बारे में भी माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा विचार किया गया है और चूंकि इसमें याचिकाकर्ता का आपराधिक मामले में आरोपी के रूप में कौमार्य परीक्षण करने के अधीन थी, इसलिए संक्षेप में इन न्यायिक घोषणाओं का उल्लेख करना उचित होगा।

71. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***डी. के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (उपर्युक्त)*** में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी, निरोध और पूछताछ के लिए अनुसरण किए जाने वाले सिद्धांत और प्रक्रियाएं अधिकथित करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया थाः

> "17. मौलिक अधिकार भारतीय संविधान में एक गौरव का स्थान रखते हैं। अनुच्छेद 21 में प्रावधान है कि किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार, व्यक्तिगत स्वतंत्रता संविधान के तहत एक पवित्र और संरक्षित अधिकार है। **"व्यक्तिगत स्वतंत्रता का जीवन" अभिव्यक्ति को मानव गरिमा के साथ जीने के अधिकार को शामिल करने के**

लिए अभिनिर्धारित किया गया है और इस प्रकार इसमें राज्य या इसके अधिकारीगण द्वारा यातना और हमले के खिलाफ एक गारंटी भी शामिल होगी।"

* * * * *

22... क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार का कोई भी रूप संविधान के अनुच्छेद 21 के अवरोध के भीतर आएगा, चाहे वह अन्वेषण, पूछताछ या अन्यथा के दौरान हो। अगर सरकार के अधिकारीगण कानून तोड़ने वाले बन जाते हैं यह कानून के प्रति अवमानना को बढ़ावा देने के लिए बाध्य है और अराजकता को बढ़ावा देगा और प्रत्येक व्यक्ति में कानून बनने की प्रवृत्ति होगी जिससे अराजकता फैलेगी। कोई भी सभ्य देश ऐसा नहीं होने दे सकता। क्या **एक नागरिक के जीवन के अपने मौलिक अधिकार को छीन लिया गए, जिस क्षण कोई पुलिस उसे गिरफ्तार कर लेती है? क्या किसी नागरिक की गिरफ्तारी पर उसके जीवन के अधिकार प्रास्थगन किया जा सकता है? ये सवाल मानवाधिकार न्यायशास्त्र की रीढ़ की हड्डी को छूते हैं। जवाब, वास्तव में, स्पष्ट रूप से 'नहीं' होना चाहिए। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटी दिए इस बहुमूल्य अधिकार से** दोषियों, **विचाराधीन कैदियों, बंदियों और अभिरक्षा में लिए गए अन्य कैदियों को वंचित नहीं किया जा सकता है सिवाय ऐसे युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाने के द्वारा विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जा सकता है, जिनकी विधि द्वारा अनुमति दी गई है।**

23. नीलाबती बहेरा बनाम उड़ीसा राज्य [1993 (2) एस. सी. सी.] 746), (जिसमें आनंद, जे. एक पक्षकर थे) इस न्यायालय ने इंगित किया। कि कैदियों और निरुद्ध व्यक्तियों को अनुच्छेद 21 के तहत उनके मूल अधिकार से वंचित नहीं किया गया है और यह केवल ऐसे प्रतिबन्ध हैं जिनकी विधि द्वारा अनुज्ञा दी गई है जो गिरफ्तार किए गए और निरुद्ध किए गए व्यक्तियों के मूल अधिकारों के उपभोग पर अधिरोपित किया जा सकता है यह देखा गयाः

"यह स्वयंसिद्ध है कि दोषियों, कैदियों या विचाराधीन कैदियों को अनुच्छेद 21 के तहत उनके मूल अधिकारों से वंचित नहीं किया जाता है और यह केवल ऐसे प्रतिबंध हैं, जिनकी कानून द्वारा अनुमति दी गई है, जो ऐसे व्यक्तियों द्वारा मूल अधिकार के उपभोग पर लगाए जा सकते हैं। राज्य का यह दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि किसी नागरिक के जीवन के अजेय अधिकारों का कोई उल्लंघन न हो, सिवाय कानून के अनुसार, जब वह नागरिक अभिरक्षा में हो। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटी दिए बहुमूल्य अधिकार से दोषियों, विचाराधीन कैदियों या अभिरक्षा में अन्य कैदियों को वंचित नही किया जा सकता सिवाय कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार किया जा सकता है। पुलिस या जेल प्रशासन पर यह सुनिश्चित करने की बड़ी जिम्मेदारी है कि उसकी अभिरक्षा में रहने वाला नागरिक अपने जीवन के अधिकार से वंचित न हो। उनकी स्वतंत्रता उन्हीं चीजों की प्रकृति में है जो उन्हें बंदी बनाए जाने के तथ्य द्वारा सीमित हैं और इसलिए उनके लिए छोड़ी

> गई सीमित स्वतंत्रता में उनकी रुचि बहुमूल्य है। यदि पुलिस की अभिरक्षा में व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के सिवाय अपने जीवन से वंचित हो जाता है तो राज्य की ओर से देखभाल का कर्तव्य उत्तरदायी है।
>
> (जोर दिया गया)

72. **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चल्ला रामकृष्ण रेड्डी** (2000) 5 एस. सी. सी. 712 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्रतिष्ठापित जीवन के अधिकार की गारंटी कैदी सहित प्रत्येक व्यक्ति को है, चाहे वह सिद्धदोषी हो, विचाराधीन हो या नजरबंद हो। संबंधित टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं

> "22. जीवन का अधिकार बुनियादी मानवाधिकारों में से एक है। संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को इसकी गारंटी दी गई है और यहां तक कि राज्य को भी यह अधिकार नहीं है कि **उस अधिकार का उल्लंघन करे। एक कैदी, चाहे वह दोषी हो या विचाराधीन कैदी या नजरबंद, एक इंसान होना नहीं रुकता है। यहां तक कि जेल में रहते हुए भी वह संविधान के तहत उसे गारंटी दिए हुए जीवन के अधिकार सहित अपने सभी मूल अधिकारों का आनंद लेता है। अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने और कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपनी स्वतंत्रता से वंचित किए जाने पर, कैदी अभी भी संवैधानिक अधिकारों के अवशेष को बनाए रखते हैं।**

* * * * *

24. इस प्रकार, कैदी अधिनियम की परिभाषा के अनुसार, एक सिद्धदोषी कैदी है, एक विचाराधीन कैदी है और एक सिविल कैदी है जो निवारक निरोध विधि के अधीन नजरबंद हो सकता है। तीन श्रेणियों के कैदियों में से कोई भी जेल के अंदर रखे जाने पर अपने मूल अधिकारों को नहीं खोता है। उनके गतिविधि के अधिकार पर लगाई गई पाबंदी उनकी दोषसिद्धि या अपराध में संलिप्तता का परिणाम है। इस प्रकार, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार किसी व्यक्ति (कैदी) को उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है जो, जैसा कि मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एससीसी 248 = 1978 (2) एससीआर 621 = एआईआर 1978 एससी 597 में इंगित किया गया है, उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत होनी चाहिए।

* * * * *

27. फ्रांसिस कोरली मलिन बनाम प्रशासक, संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली, (1981) 1 एस. सी. सी. 608 = ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 746 = 1981 (2) एस. सी. आर. 516 में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जीवन के अधिकार का अर्थ मूल मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार है।

इस प्रकार, मूल अधिकार, जिसमें बुनियादी मानवाधिकार भी शामिल हैं, एक कैदी को उपलब्ध बने हुए हैं और उन अधिकारों को संप्रभु कार्यों के संबंध में उन्मुक्ति की पुरानी और प्राचीन

प्रतिरक्षा का अभिवचन करके पराजित नहीं किया जा सकता है, जिसे इस न्यायालय द्वारा कई बार अस्वीकार किया गया है..."

(जोर दिया गया)

73. **एक्स बनाम महाराष्ट्र राज्य** (2019) 7 एस.सी.सी.1 वाले मामले में, यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था। कि गरिमा का अधिकार जीवन के अधिकार का एक अनिवार्य हिस्सा है। शीर्ष न्यायालय द्वारा एक अभियुक्त के गरिमा के अधिकार को निम्नानुसार रेखांकित किया गयाः

"58..... जीवन के अधिकार का एक अजेय मूल 'गरिमा' है। [संदर्भ नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ, एआईआर 2018 एससी 4321]। मानव गरिमा का अधिकार विभिन्न रंगों और रंगों में आता है।[संदर्भ सार्वजनिक कारण बनाम भारत संघ, एआईआर 2018 एससी 1665]। हमारे प्रयोजनों के लिए, मानव की गरिमा में मानव प्रकृति में अंतर्निहित समझ, तर्कसंगत चयन और स्वतंत्र इच्छा शक्ति आदि की क्षमता अंतर्निहित है।**"किसी अभियुक्त की गरिमा न्यायाधीशों की स्याही से समाप्त नहीं होती है, बल्कि यह जेल के दरवाजों से परे रहती है और अपनी अंतिम सांस तक काम करती है।"**

(जोर दिया गया)

74. चूंकि हत्या के मामले की जाँच के दौरान इस मामले में कौमार्य परीक्षण किया गया था और यह न्यायालय इस प्रश्न का विनिश्चय नहीं कर रहा है कि क्या यह आवश्यक था या नहीं बल्कि केवल इसकी संवैधानिक विधिमान्यता की

परीक्षा कर रहा है, इसलिए यह ध्यान दें करना आवश्यक होगा कि अभियुक्त के रूप में, अभियुक्त/कैदी/बंदी के लिए उपलब्ध मूल अधिकार को निलंबित नहीं किए गए हैं जहां तक उनकी निजता और गरिमा का प्रश्न है और इस पर मामले में विस्तार से चर्चा की गई है। ***डी. के. बसु पूर्व बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*** (उपर्युक्त) और अन्य उदाहरण ऊपर उद्धृत किया गया है।

75. उपरोक्त पूर्व निर्णय पर विचार करने पर, निःसंदेह, यह इंगित होता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उपलब्ध किसी व्यक्ति के "गरिमा के अधिकार" को तब भी निलंबित नहीं किया जाता है जब उस व्यक्ति पर कोई अपराध करने का आरोप लगाया जाता है या उसे गिरफ्तार किया जाता है। अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को केवल कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार निलंबित किया जा सकता है, और ऐसी प्रक्रिया न्यायसंगत, निष्पक्ष और तर्कसंगत होनी चाहिए और मनमानी, काल्पनिक और दमनकारी नहीं होनी चाहिए। [सन्दर्भ: **मेनका गांधी बनाम भारत संघ** (1978) 1 एससीसी 248] व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को उसी क्षण निलंबित कर दिया जाता है जब किसी अभियुक्त को गिरफ्तार करते है क्योंकि राज्य की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक हो सकता है। तथापि, गरिमा का अधिकार किसी अभियुक्त, विचाराधीन कैदी या सिद्धदोषी के लिए भी निलंबित या अधित्यजित/छोड़ा नहीं गया है।

ङ. <u>कौमार्य परिक्षण: पीड़िता बनाम आरोपी</u>

76. कौमार्य परीक्षण के संबंध में दो तरह के विचार नहीं हो सकते - यौन उत्पीड़न की शिकार महिला के मौलिक अधिकार के हनन में और जांच के अधीन महिला। यह किसी व्यक्ति के पीड़ित या अभियुक्त होने का मुद्दा नहीं है, लेकिन महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि किसी महिला पर, चाहे वह पीड़ित हो या अभियुक्त, किए जाने वाले परीक्षण से मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है।

77. यह अभिनिर्धारित करना कि यौन उत्पीड़न की शिकार किसी महिला का और किसी अपराध की अभियुक्त किसी महिला का कौमार्य परीक्षण करना भिन्न स्तर पर होगा या यह कि पहला असंवैधानिक होगा और बाद वाला संवैधानिक होगा, एक प्रतिकूल खोज होगी और भारत के संविधान और अनुच्छेद 21 के आशय के खिलाफ़ होगा।

78. इसके प्रकाश में, यह भी देखा और दोहराया जा सकता है कि फिलहाल, किसी भी कानून के तहत ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है, जो एक महिला आरोपी के "कौमार्य परिक्षण" का प्रावधान करती हो। कौमार्य परीक्षण अमानवीय व्यवहार का एक रूप है और यह मानव गरिमा के सिद्धांत का उल्लंघन करता है। किसी व्यक्ति की गरिमा के अधिकार का उल्लंघन करने वाले इस परीक्षण का राज्य द्वारा सहारा नहीं लिया जा सकता है और यह भारतीय संविधान की योजना और अनुच्छेद 21 के तहत प्रतिष्ठापित जीवन के अधिकार के तहत होगा।

79. इस न्यायालय को उन मूल्यों और संवैधानिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होना चाहिए जो लोकतांत्रिक समाज में कानून का शासन स्थापित करने के लिए आवश्यक हैं जो सभी नागरिकों की अंतर्निहित गरिमा के सम्मान पर जोर देते हैं। मानव गरिमा के सम्मान पर सवाल नहीं उठाया जा सकता और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसे अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार के हिस्से के रूप में मानव अधिकार के तौर पर मान्यता दी है। इस संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय के फैसले यह स्पष्ट करते हैं कि अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक संवैधानिक अधिकार में गरिमा की धारणा को इस तरह से व्यक्त नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसे इसका हिस्सा माना गया है और इसे अत्यधिक महत्व दिया गया है।

80. सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ हत्या के आरोप की सच्चाई का पता लगाने के लिए कौमार्य परिक्षण का उपयोग किया गया था। निःसंदेह, यह परीक्षण अपने आप में यौन हमले की शिकार किसी भी महिला के साथ-साथ अभिरक्षा में मौजूद किसी भी अन्य महिला के लिए बेहद दर्दनाक है और इसका उस व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव पड़ना तय है।

81. हैरानी की बात है कि भले ही "कौमार्य" शब्द की कोई निश्चित वैज्ञानिक और चिकित्सीय परिभाषा न हो, लेकिन यह एक महिला की शुद्धता का प्रतीक बन गया है। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई फैसलों में निर्धारित किया

गया है, अंतर्वेधी परीक्षण प्रक्रिया की कोई चिकित्सा स्थिति नहीं है। गलत होने और उनके निश्चित अध्ययन होने के बावजूद कि कुछ महिलाओं में योनि संभोग के दौरान हैमेन/हायमन फट नहीं सकते हैं, जबकि अन्य में वे खेल और अन्य गतिविधियों के कारण योनि संभोग के बिना भी फट सकते हैं और कुछ महिलाओं के साथ कुछ भी नहीं हो सकता है, इस तरह का परीक्षण किया गया है।

82. इसके अलावा, बिना किसी संदेह के, यह लिंग पूर्वाग्रह और कौमार्य की झूठी अवधारणा को एक महिला की शुद्धता के साथ तुलना किए जाने के समाज के दृष्टिकोण और जुनून पर निर्भर करता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह महिलाओं के शरीर, उनके यौन व्यवहार और इस दृष्टिकोण को नियंत्रित करने के बराबर है कि एक महिला जिसके पास हैमेन/हायमन है शुद्ध और निर्दोष है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, **झारखंड राज्य बनाम शैलेंद्र कुमार राय (उपरोक्त)** के सबसे हालिया मामले में इस हद तक अभिनिर्धारित किया है कि यदि यौन हमले के पीड़ितों पर इस तरह के परीक्षण किए जाते हैं, तो यह दुराचार के बराबर होगा और इस प्रकार, इस महिला विरोधी प्रथा को समाप्त करने की कोशिश की है।

83. अतः, यह न्यायालय अभिनिर्धारित करता है कि यह परीक्षण लैंगिकवादी है और यह एक महिला अभियुक्त की गरिमा के मानवाधिकार का उल्लंघन है यदि उसे अभिरक्षा में रहते हुए इस तरह के परीक्षण के अधीन किया जाता है। इस

तरह के परीक्षण के दीर्घकालिक और अल्पकालिक नकारात्मक प्रभाव कई रिपोर्टों में दर्ज किए गए हैं।

84. इस न्यायालय के लिए यह अभिनिर्धारित करना कठिन होगा कि वह मौलिक अधिकारों के संवैधानिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है कि प्राधिकारियों की अभिरक्षा में एक व्यक्ति शारीरिक अखंडता के अधिकार को समर्पण करता है और अभियोजन पक्ष के लिए अपने निकाय के माध्यम से साक्ष्य खोजने के लिए शारीरिक अंतर्वेध के लिए समर्पण करता है। कौमार्य परीक्षण के माध्यम से शारीरिक आक्रमण द्वारा अभिरक्षा में इस तरह के व्यवहार से अपमानित होने की भावना भी **लिंग और रूढ़ियों के आधार पर भेदभाव की अवांछनीय और घृणित धारणा** को सामने लाती है।

85. अभिरक्षा में गरिमा अर्थात् अभिरक्षा में रहते हुए किसी व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करने की अवधारणा, चाहे वह पुलिस हो या न्यायिक पर **सुनील बत्रा (II) बनाम दिल्ली प्रशासन** (1980) 3 एस.सी.सी. 488 के मामले में विस्तार से चर्चा की गई है जो न्यायिक हिरासत में व्यक्तियों की यातना से सम्बन्धित है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी पुलिस हिरासत में हिंसा के संबंध में कई निर्णयों में निर्णय दिया है। वर्तमान मामले ने न्यायालय का ध्यान पुलिस अभिरक्षा में महिला की गरिमा के महत्वपूर्ण मुद्दे की ओर आकर्षित किया है। इस न्यायालय का मानना है कि एक महिला की अभिरक्षा की गरिमा की

अवधारणा में पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए भी गरिमा के साथ जीने का उसका अधिकार सम्मिलित होगा। उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में सच्चाई तक पहुंचने के बहाने कौमार्य परिक्षण कराना अनुच्छेद 21 में निहित उसके अधिकार का अतिक्रमण और उल्लंघन होगा और **डी.के. बासु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** (उपर्युक्त) के निर्णय में यह समझाया गया है|

86. यह न्यायालय विधि प्रवर्तन अभिकरण के इस तर्क से प्रभावित नहीं है कि कानूनों को बनाए रखने के लिए कौमार्य परीक्षण आवश्यक था क्योंकि यह तर्क स्वयं ही मूल सिद्धांतों का उल्लंघन करता है कि अभिरक्षा में भी किसी व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखना है। कौमार्य परीक्षण का आयोजन न केवल जांच एजेंसी द्वारा शारीरिक अखंडता में हस्तक्षेप के समान है, बल्कि एक महिला की मनोवैज्ञानिक अखंडता में हस्तक्षेप भी है, जिसका एक महिला के मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर और गहरा प्रभाव पड़ेगा।

87. किसी व्यक्ति के हिरासत में होने पर भी कुछ मौलिक अधिकारों को निलंबित या उल्लंघन या संक्षिप्त नहीं किया जा सकता है और गरिमा का अधिकार एक ऐसा मौलिक अधिकार है जो अनुच्छेद 21 के दायरे में आता है।

88. तथापि, यह न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि अभिरक्षा में गरिमा का अधिकार उन साधारण तनावों और चिंताओं को संदर्भित नहीं करता है जो एक व्यक्ति अभिरक्षा में होने और पूछताछ के अधीन होने के परिणामस्वरूप महसूस

कर सकता है बल्कि अभिरक्षा में होने के दौरान भी संवैधानिक संरक्षण के अधिकार अर्थात् गरिमा के अधिकार को संदर्भित करता है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार पुलिस द्वारा वैध पूछताछ से अभिरक्षा में लिए गए व्यक्ति के लिए एक ढाल के रूप में लिया जाए।

89. जहां तक यौन उत्पीड़न के पीड़ितों का संबंध है, हमारे देश ने इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों के माध्यम से सकारात्मक और निश्चित रूप से प्रगति की है, इस न्यायालय का मानना है कि **लिल्लू बनाम हरियाणा राज्य** (उपरोक्त) और **झारखंड राज्य बनाम शैलेंद्र कुमार राय @पांडव राय** (उपरोक्त) में दिए गए निर्णयों के समान सादृश्य पर अभिरक्षा में अभियुक्त महिला पर इस प्रकार के परिक्षण करना भी उसकी गरिमा के अधिकार का हनन होगा और इसलिए यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का हनन होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अभिरक्षा में एक अभियुक्त के अधिकारों की भी रक्षा की जानी चाहिए, भले ही कुछ अधिकार राज्य की सुरक्षा के अधीन हों।

90. संवैधानिक प्रणाली के तहत, न्यायालय ऐसी किसी भी प्रथा के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है जो मानव गरिमा की व्याख्या न की जा सकने वाली पीड़ा का कारण बन सकती है। संवैधानिक न्यायालय पर एक उच्च कर्तव्य है और यह सुनिश्चित करने के लिए इसकी गंभीर जिम्मेदारी है कि भारत के संविधान द्वारा

प्रदत्त मौलिक अधिकार हर समय जीवंत कानून बने रहें और प्रत्येक भारतीय नागरिक के लाभ के लिए संवैधानिक ढाल के रूप में कार्य करता रहें।

घ. <u>निष्कर्ष और निर्देश</u>

91. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस याचिका का निपटान आगामी पैराग्राफों में दी गई टिप्पणियों और निर्देशों के साथ किया जाता है।

92. **प्रार्थना (क):** किसी महिला कैदी, जांच के अधीन आरोपी, या हिरासत में, चाहे वह न्यायिक हो या पुलिस, पर किए गए कौमार्य परिक्षण को असंवैधानिक घोषित किया जाता है और संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है जिसमें गरिमा का अधिकार शामिल है।

93. **प्रार्थना (ख):** जहां तक केंद्रीय जांच ब्यूरो के खिलाफ कार्रवाई करने की प्रार्थना का संबंध है, यह विवादित नहीं है कि वर्ष 2008 में जब यह परीक्षण याचिकाकर्ता पर किया गया था, तो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा या अन्यथा इस तरह के परीक्षणों को असंवैधानिक घोषित करने या एक महिला यहां तक कि यौन हमले की पीड़ितों के मौलिक अधिकार का उल्लंघन घोषित करने के लिए कोई दिशानिर्देश नहीं थे, और इस तरह के परीक्षण पूरे देश में यौन हमले के पीड़ितों के मामलों में किए जा रहे थे। इसलिए, प्रासंगिक समय पर, कानून द्वारा या किसी भी निर्णय द्वारा इसे संचालित करने के लिए वर्जित नहीं किया गया था, भले ही यह प्रथा कितनी भी घृणित या निंदनीय क्यों न रही हो।

93.1. याचिकाकर्ता का तर्क है कि केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा कौमार्य परिक्षण की रिपोर्ट को चयनात्मक रूप से प्रकट करना और हाइमेनोप्लास्टी के झूठे सिद्धांत को पेश करना मानहानि के बराबर है, जो इस न्यायालय द्वारा जांचा नहीं जा सकता है और याचिकाकर्ता के पास मुक़दमे के समापन के बाद कानून में अन्य उपाय उपलब्ध है, जिनका सहारा लिया जा सकता है| यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अभिरक्षा में गरिमा का अधिकार और जांच एजेंसी द्वारा मानहानिकारक माने जाने वाले कार्य एक दूसरे से स्वतंत्र अधिकार हैं। प्रतिष्ठा का संरक्षण मानहानि के मामले के संदर्भ में हो सकता है।

93.2. इस मामले में याचिकाकर्ता द्वारा झेली गई चिंता, तनाव और कलंकित होने की भावना को संवैधानिक रूप से संरक्षित मानव अधिकार नहीं माना जा सकता है, लेकिन इसके खिलाफ उपचार मानहानि के कानून के तहत कहीं और हो सकता है|

94. **प्रार्थना (ग):** मुआवजे के अनुदान के संबंध में प्रश्न या क्या याचिकाकर्ता को हिरासत में यातना दी गई थी या नहीं, यह राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा तय किया जाना है, और चूँकि याचिकाकर्ता द्वारा दोषी ठहराए जाने के खिलाफ़ दायर अपील केरल के माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, जो विचारण की निरंतरता है, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग कानून के जनादेश और इसके विनियमों अर्थात् राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (प्रक्रिया) विनियम, 1994 के

अनुसार होगा, याचिकाकर्ता के खिलाफ़ आपराधिक मुकदमा समाप्त होने के बाद अभिरक्षा में यातना या मुआवजे के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा दायर अभ्यावेदन पर नए सिरे से विचार करेगा|

95. **प्रार्थना (घ):** प्रार्थना (घ) के संबंध में, यह विवाद में नहीं है कि जब दिनांक 17.03.2009 अभ्यावेदन एनएचआरसी के समक्ष दाखिल किया गया था और जब दिनांक 6/8.05.2009 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, तब याचिकाकर्ता का विचारण केरल में संबंधित न्यायालय के समक्ष लंबित था। इसे ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (प्रक्रिया) विनियम, 1994 के विनियम 9 पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया था, जिसमें यह प्रावधान है कि आयोग उन मामलों से सम्बन्धित शिकायतों को आरंभ में ही खारिज कर सकता है जो किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के समक्ष विचाराधीन हैं।

95.1. याचिकाकर्ता का यह तर्क कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के समक्ष मानव अधिकार की कार्यवाही में देरी का परिणाम प्राकृतिक न्याय से इनकार है और आगे इससे याचिकाकर्ता को मनोवैज्ञानिक और सामाजिक नुकसान हुआ है, जो राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (प्रक्रिया) विनियम, 1994 के विनियम 9 के तहत योग्यता के बिना है क्योंकि आयोग अपने स्वयं के नियमों से बंधा हुआ था और उसी के प्रतिबन्ध के कारण मांगी गई राहत नहीं दे सकता था, हालांकि दरवाजे

अभी तक बंद नहीं हुए हैं क्योंकि विचारण के अंत में, याचिकाकर्ता फिर से राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से संपर्क कर सकता है।

96. वर्तमान मामले में शामिल मुद्दे के महत्व और संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय निम्नलिखित निर्देश पारित करने के लिए भी प्रवृत्त हैः

> **(i)** यह घोषित किया जाता है कि **किसी महिला कैदी, जांच के अधीन आरोपी, या हिरासत में, चाहे वह न्यायिक हो या पुलिस, पर किए गए कौमार्य परिक्षण असंवैधानिक है** और संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है जिसमें गरिमा का अधिकार शामिल है।
>
> **(ii)** उपरोक्त कौमार्य परिक्षण की असंवैधानिकता के बारे में आवश्यक **जानकारी** सभी जाँच एजेंसियों/हितधारकों को **सचिव, केन्द्रीय गृह मंत्रालय, सचिव, केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय और सचिव, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार** के माध्यम से **प्रसारित की जाए**।
>
> **(iii) दिल्ली न्यायिक अकादमी** को अपने पाठ्यक्रम और जांच अधिकारियों, अभियोजकों और अन्य हितधारकों के लिए आयोजित कार्यशालाओं में इस मुद्दे के बारे में जानकारी शामिल करने का निर्देश दिया जाता है।

(iv) इसी प्रकार, **दिल्ली पुलिस प्रशिक्षण अकादमी** इसके प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में इस विषय से संबंधित आवश्यक जानकारी भी शामिल करें।

(v) पुलिस आयुक्त, दिल्ली को भी निर्देश दिया जाता है कि वे यह सुनिश्चित करें कि जांच अधिकारियों को इस संबंध में सूचित और संवेदनशील किया जाए।

97. बहस के दौरान यह स्पष्ट किया गया कि यह न्यायालय इस प्रश्न की जांच कर रहा है कि क्या याचिकाकर्ता पर किया गया कौमार्य परीक्षण गरिमा के साथ जीने के उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन था, न कि इसके परिणाम और न्यायालय के समक्ष इसके प्रभाव या स्वीकार्यता के संबंध में, जिसके समक्ष आपराधिक मामले का विचारण लंबित है। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा केवल याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार के उल्लंघन और दिल्ली में मुख्यालय वाले राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के समक्ष याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज करने और केंद्रीय जांच ब्यूरो के अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई करने की याचिका के संबंध में था, जो दिल्ली में इसका मुख्यालय होने के कारण जांच के दौरान परीक्षण कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, और इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का सम्बन्धित न्यायालयों के समक्ष लंबित आपराधिक मामले पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

98. उपर्युक्त शर्तों को ध्यान में रखते हुए, याचिका का निपटान किया जाता है।

99. इस निर्णय की एक प्रति इस न्यायालय के विद्वान रजिस्ट्रार जनरल द्वारा (i) केंद्रीय गृह मंत्रालय के सचिव, (ii) केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के सचिव, (iii) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग, दिल्ली सरकार के सचिव (iv) निदेशक (अकादमिक), दिल्ली न्यायिक अकादमी, (v) पुलिस आयुक्त, दिल्ली, और (vi) निदेशक, दिल्ली पुलिस अकादमी को इसकी सामग्री पर ध्यान देने और अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए अग्रेषित की जाए।

100. इस मामले से अलग होने से पहले, यह न्यायालय इस मामले में पेश विद्वान अधिवक्तागणों- श्री रोमी चाको, श्री रिपु दमन भारद्वाज, श्री कीर्तिमान सिंह और श्री एस. नंदा कुमार द्वारा दी गई सहायता के लिए अपनी सराहना को अभिलेख पर रखना चाहता है।

स्वर्ण कांता शर्मा, न्यायाधीश

7 फरवरी, 2023

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*